शान्ति सीरीज प्रथम पुष्प

गुरु-दक्षिणा

लेखक :-

राजेश गुप्त

प्रकाशक तथा मुद्रक

सुरेन्द्र कुमार

भास्कर प्रेस, देहरादून

प्रथम संस्करण
१००० प्रति

मूल्य २॥)

—※ समर्पण ※—

युद्ध में लौटे हुए वीर सैनिकों, उनके मित्रों, बन्धु-बान्धवों
तथा रण-स्थल में जाने वालों के प्रति सहानुभूति
रखने वाले सुहृद सज्जनों
के कर-कमलों में:—

लेकर आश्रय 'राज-कमल' का, शंकित मन से आया हूँ।
क्षुद्र सही, पर मान सहित, यह प्रेम-भेंट मैं लाया हूँ॥
प्रेम की वस्तु तुच्छ भले हो, इसे नहीं ठुकरायेंगे।
आशा नहीं—विश्वास भी है, क्या इसे नहीं अपनायेंगे?

१

अपनी बात

उस समय कोई यह कहता कि मुझ जैसा एक हवाई उड़ाका भी युद्ध समाप्त होने के बाद एक ऐसी पुस्तक लिखेगा जो बहुत-कुछ एक उपन्यास से मिलती-जुलती होगी, तो सच मानिये-मैं कभी भी उस पर विश्वास न करता। वास्तव में जो कुछ आज मैं लिखने बैठा हूं, वह सब आश्चर्योपन्यास की अद्‌भुत घटनाओं के समान आश्चर्यजनक होने पर भी, कल्पित कदापि नहीं कही जासकतीं। कोई विश्वास करे न करे—मैं इसके लिए उन्हें बाध्य नहीं करूंगा; किन्तु सत्य का अपमान न हो, इसलिये मैं जो कुछ भी लिखूंगा कोरी कल्पना के आधार पर नहीं, प्रत्युत अपने साथ घटित घटनाओं का ही विशेष रूप से उल्लेख करूंगा—ताकि लोग उसे पढ़ें, समझें और पूरी बातों का ज्ञान होने पर हम युद्ध में जाने वाले सिपाहियों के प्रति उनका कोमल हृदय पूर्ण सहानुभूति से भर जाये—न केवल इतना ही, बल्कि आने वाली सन्तान को इस नर-संहारक-युद्ध में शामिल होने से मना करें, रोकदें।

मेरा पूरा नाम विरेन्द्रकुमार वर्मा है; किन्तु मुझे जानने वाले लोग संक्षेप में केवल मिस्टर वर्मा कह कर ही बुलाते हैं। मैं रहने वाला लखनऊ का हूं, पर उन दिनों प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिये मैं इलाहाबाद आया हुआ था। बी०ए० की वार्षिक परीक्षा सफलता पूर्वक समाप्त कर देने के बाद कालेज का हास्टेल छोड़ कर पांच छः दिन के लिये दूर के एक सम्बन्धी के आग्रह करने पर मैं उनके घर जाकर रहने लगा था। कहने को तो वे दूर के मेरे एक सम्बन्धी ही थे; किन्तु बहुत दिन हुये किसी बात पर एक बार मेरे पिता जी के साथ उनका कोई झगड़ा हो गया था, जिसमें शायद उनकी आपस में मुकदमे बाजी भी चल चुकी थी। इसी लिये वे यद्यपि ऊपर से तो मुझे काफ़ी स्नेह की दृष्टि से देखा करते थे, किन्तु हृदय में उनके इस समय भी बदला लेने की भावना छिपी हुई थी। मेरे पिता जी से तो उनकी कोई पार न बसाई इस लिये वे अब मेरे पीछे पड़े हुए थे। अपने पिता की एकमात्र सन्तान होने के कारण वे मुझे गर्त में गिरा कर न केवल मेरा ही अनिष्ट करना चाहते थे, बल्कि मेरे पिताजी को वृद्धा-वस्था में पुत्र-स्नेह से वंचित करने की भी उन्हें आन्तरिक इच्छा थी।

पहले वे एक मुख्तार थे! पर युद्ध आरंभ होने के बाद ही उन्होंने इस काम को एक प्रकार से तिलाञ्जली देदी और बन बैठे सरकार की ओर से एक युद्ध-प्रचारक। पहले की अपेक्षा इस काम में उन्हें अधिक लाभ था। आय-वृद्धि के साथ २ यश-लाभ भी दिनों-दिन बढ़ने लगा। ठीक भी है, यदि विपद के समय कोई किसी

का उपकार करता है तो दूसरा कृतज्ञ होता ही है—फिर वे तो उस समय सरकार के शुभचिन्तक बन बैठे थे। भला क्यों न इसका फल मिलता। मेरे पिता जी रायसाहब थे। पर वे उनसे भी अधिक सम्मानित होने की कल्पना कर रहे थे और इसी लिये तन, मन, धन सभी कुछ उनका उस समय युद्ध के लिये प्रोपेगेन्डा करने में लगा हुआ था। अनेक पुरुषों को वे अब तक भर्ती करके युद्ध में भेज चुके थे। न जाने कितने भोले-भाले नवयुवक उनकी लच्छेदार बातों में आकर युद्ध में अपने प्राणों की बलि चढ़ा चुके थे। केवल उन्हीं के द्वारा न जाने कितनी माताओं की गोद सूनी होगई थी, कितने ही पिता अपने नवयुवक पुत्र के लिये बुढ़ापे में अंधे होगये थे और मालूम नहीं कितनी ही निर्दोष स्त्रियों को बाध्य होकर वैधव्य का जीवन व्यतीत करना पड़ा था। उन्हीं के कारण, एक मात्र उन्हीं युद्ध-प्रचारक महाशय के कारण भोले-भाले असंख्य बच्चे अनाथ, आश्रयहीन, गृह-हीन होकर पथ के भिखारी बन गये थे। ओह, कितना पाप किया था उन्होंने ! कैसे घोर अपराधी थे वे लोग ! एक मात्र उन्हीं के कारण तो इस नर-संहारक-युद्ध को प्रोत्साहन मिला था, एकमात्र उन्हीं दुष्टों के कारण तो मानव-रक्त की नदियें बही थीं। ओफ़, उन्हीं नर-पिशाचों के कारण ये सब हत्याकाण्ड हुए थे।

मुझे भी उन्होंने ही फांसा था। आय-वृद्धि अथवा यश-प्राप्ति के लिये तो क्या, मुझे तो केवल पिताजी से अपने अपमान का बदला लेने की भावना से ही उन्होंने युद्ध में भरती कराया था।

ओह, यदि उस समय यह सब बातें मैं जानता होता तो कभी भी उनके चगुल में न फंसता। परन्तु बुद्धि तो ठोकर लगने के बाद ही आती है; और फिर जहां इतने मनुष्य उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं लच्छेदार बातों में फसकर अपने जीवन की आहुति चढ़ा चुके थे, वहां भला मैं ही अकेला कैसे बचता। प्रायः सभी भर्ती होने वाले पढ़े-लिखे नवयुवकों को उन्होंने यह कर ही फंसाया था,—"भाइयो, यह युद्ध तुम्हारा अपना ही युद्ध है। दूर देशों के रहने वाले विदेशी तुम्हारे देश पर आक्रमण करने को तैयार हैं। उन्हीं दुष्टों से, बर्बर जाति के शक्तिवान लोग से, अपने देश की, अपने सम्मान की. अपने जाति और धर्म की रक्षा करने के लिये कटिबद्ध होकर तुम्हें फौरन ही इस युद्ध में शामिल होजाना चाहिये। याद रक्खो. अब विलम्ब करने का समय नहीं रह गया है। शत्रु अपनी पूरी तैयारी करके आंधी-तूफान की तरह आगे बढ़ा चला आरहा है। यदि शीघ्र ही आगे बढ़कर उसका मुकाबला न किया गया तो फिर देश. जाति और धर्म की रक्षा करना असंभव हो जायेगा। भारतमाता की समस्त आशायें एक मात्र तुम्हारे जैसे नवयुवकों पर ही अवलम्बित हैं। यह दूसरों का नहीं, बल्कि अपने देश का ही धर्म-युद्ध है। इसी लिये कहता हूं—ऐ मेरे देश के बहादुर नवयुवको, बढ़ो! कमर कस कर आगे बढ़ो!! और शत्रुओं को दिखादो कि तुम भारतमाता की सन्तान हो।"

इसी प्रकार ओजस्वी भाषण दे दे कर उन्होंने बहुत-से मनुष्यों को युद्ध में जाने के लिये प्रोत्साहित किया था। अन्य

लोगों के साथ-साथ मैं भी उनके प्रभाव से अछूता न बच सका। बी०ए० की परीक्षा समाप्त होते ही वे मुझे स्वयं कॉलेज जाकर अपने घर बुला लाये। यद्यपि लखनऊ जाकर अपने घर शीघ्र पहुंचने की मुझे अत्यधिक उत्सुकता थी; किन्तु उनके आग्रह की मैं किसी प्रकार भी उपेक्षा न कर सका और मुझे सामान बांध कर वहां जाना ही पड़ गया।

अपने घर ले जाकर वे पहले दिन से ही मुझ पर अपना रंग जमाने लगे। इधर-उधर की अनेक बातें समझाने के पश्चात् वे कहते,—"भाई, सच पूछो तो इस बार का युद्ध हम लोगों की भलाई के लिये ही छिड़ा है। अब मुझे शत-प्रतिशत यह विश्वास हो गया है कि युद्ध के समाप्त होते न होते ही हम लोग पूर्णरूप से स्वाधीन कर दिये जायेंगे। क्या तुमने नहीं सुना, अभी कोई चार-पाँच दिन ही तो हुये जब कि प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में हम भारतवासियों को यह विश्वास दिलाया है कि इस युद्ध में सफलता पूर्वक विजय प्राप्त करते ही वे हमारे देश को स्वतन्त्र कर देंगे। क्या अच्छा ख्याल है उनका! कोई कुछ भी कहे; पर मैं तो भई, उनकी तारीफ ही करूंगा। अंग्रेज जाति की सत्यता और ईमानदारी पर मुझे दृढ़ विश्वास है। इस विपद् के समय उन लोगों की सहायता करना ही हमारा परम कर्तव्य है। शास्त्रों में भी कुछ ऐसा ही लिखा है। राजा के संकट काल में प्रजा को अपना तन, मन और धन सभी कुछ न्योछावर कर देना चाहिये। तभी राजा भी अपनी प्रजा का ख़्याल रख

सकता है नहीं तो उसे क्या पड़ी जो व्यर्थ ही सिर-दर्द मोल लेता फिरे।"

तात्पर्य यह कि मुझे उन्हों ने साम, दाम, दण्ड और भेद चारों गुणों से दो दिन के भीतर ही पूर्णतया अपने वशीभूत कर लिया और अंत में बाध्य हो कर मुझे रायल एयर फोर्स में अपना नाम लिखाना ही पड़ा। पहले मैंने सोचा कि एक पत्र भेज कर पिताजी की भी राय लेलूं; किन्तु उन्हों ने मुझे एकदम मना कर दिया। कहने लगे,—"तुमतो भई, बड़े ही सरल प्रकृति के मालूम देते हो। भला कोई मनुष्य अपने बेटे को यूं आसानी से लड़ाई पर जाने भी देता है। सच पूछो तो यह माता-पिता ही मोह-जाल फैला कर अपने बेटे की उन्नति में रोड़ा अटका देते हैं। इसी लिये मेरे विचार से अभी नहीं; जब तुम डाक्टरी होने के बाद ठीक से भर्ती कर लिए जाओ, तभी कोई चिट्ठी-पत्री उन्हें देना, नहीं तो याद रक्खो—वे फौरन तुम्हें रोक लेंगे, फिर मुझे दोष न देना। मैं जो कुछ कहूंगा तुम्हारी भलाई के लिये ही कहूंगा। ऐसा शुभ अवसर बार-बार नहीं आता।"

मुझे उनकी बात पहले तो कुछ खटकी, किन्तु शीघ्र ही जंच भी गई। मेरा स्वार्थ ही मुझे ले डूबा। साढ़े चार सौ रुपये तनख्वाह, राशन और कपड़ा मुफ्त—और फिर बाहर का एलाउंस अलग। भला इससे अच्छी नौकरी मुझे और कहां मिलती? इन सुविधाओं के अतिरिक्त मेरे मन में हवाईजहाज

पर बैठ कर जंगल, पहाड़, नदिएँ, बड़े-बड़े समुद्र और दूरदेशों को उड़ते-उड़ते देखने की इच्छा भी अधिक बलवती हो उठी थी। इसी लिये उनके कहने से मैंने जानबूझ कर उस समय अपने पिताजी को पत्र नहीं लिखा। उसी पाप का विषम परिणाम तो मैं अब भोग रहा हूं। यदि उस कपटी सम्बन्धी के छलपूर्ण व्यवहार को मैं उस समय समझ जाता और अपने पिताजी को पत्र लिख दिये होता तो शायद ऐसे दुर्दिन कभी भी न देखता।

दूसरे दिन ही मेरे उन सम्बन्धी महाशय जी ने मुझे मिलिटरी के डाक्टर के सामने डाक्टरी-परीक्षा के लिये पेश कर दिया। भली प्रकार देखने की नौबत ही न आई और यूं ही सरसरी तौर पर देखने के बाद मुझे पास कर दिया गया। डाक्टरी परीक्षा होने भर की देर थी कि उसके बाद मुझे तुरन्त ही उन लोगों ने नामादि लिख कर मिलिटरी के कैम्प में भेज दिया और उसी दिन से मैं एक पक्का फौजी समझा जाने लगा। मेरे जीवन में महान् परिवर्तन हुआ। कहाँ उच्छृङ्खलतापूर्ण एक विद्यार्थी का स्वतन्त्र जीवन और कहां फौजी-पाबन्दियों से भरा हुआ यह व्यस्त जीवन! ओह, मेरा दिल ही जानता है आरंभ के वे दिन मैंने किस कठिनाई से गुजारे थे! कॉलेज की दिन-चर्य्या से यहां की दिनचर्य्या में आकाश और पाताल का अन्तर था। नित्य प्रातः उठकर आवश्यक कार्यों से निवृत होने के बाद पैरेड करनी पड़ती, फिर वर्कशाप जाकर मशीनों का काम सीखना

पड़ता। एक बजे के लगभग भोजन करने की छुट्टी मिलती, इसके बाद स्कूल जाकर हवाई जहाज़ का काम सीखना पड़ता, फिर चार बजे आकर पी०टी० और पैरेड करनी पड़ती थी।

यह क्रम प्रायः नित्य ही चलता रहता। कभी पी०टी० कभी पैरेड, कभी भागना कभी दौड़ना और कभी वर्कशाप जाकर हथौड़े से गरम लोहा पीटना—बस, यही थी वहां की दिनचर्य्या! कहीं जाओ, कुछ भी करो—पर रहना पड़ता हर समय मिलिटरी के नियम और सीमा के भीतर ही। जरा भी किसी ने सेना-सम्बन्धी-नियमों का उल्लंघन किया कि बस उसकी आफत आई। हर काम में, हर बात में और प्रत्येक अवसरों पर मिलिटरी के 'डिसिप्लिन' का ख्याल रखना पड़ता था। और कुछ हो न हो, पर मिलिटरी का 'डिसिप्लिन' ही वहां का सब-कुछ है। जो इसका ख्याल रखता है, हर समय इसी का पालन करता है—वही मानों एक कुशल सैनिक है। मिलिटरी का 'डिसिप्लिन' न मानने वाले को अधिकारीवर्ग उचित दण्ड देने की व्यवस्था करता है।

भर्ती होने के बाद दूसरे दिन मैंने अपने पिताजी को एक लम्बी चिट्ठी लिखी, जिसमें बी०ए० की परीक्षा समाप्त कर देने से लेकर आज तक की पूरी बातें लिख डालीं। साथ ही उनकी बिना आज्ञा के फौज में भर्ती होने के लिये क्षमा भी मांगी और पत्रोत्तर शीघ्र देने की उनसे मैंने प्रार्थना भी की। मुझे पूर्ण आशा थी कि

चौथे या पांचवे दिन पिताजी का पत्र मेरे पास अवश्य पहुंच जायेगा; किन्तु दुर्भाग्यवश ऐसा न हो सका। पत्र भेजने के तीसरे दिन प्रातः आठ बजे हमारे कमाण्डिङ्ग आफिसर की ओर से हमें एक सूचना मिली, जिसमें हमें बताया गया कि हम लोगों को वहां से बदल कर पूना कैम्प जाने की आज्ञा हुई है। मेरे साथ बीस रंगरूट और भी थे, जिनमें से कुछ हवाईजहाज का काम सीखते थे और कुछ उन में से आई० ई० एम० ई० की अन्य शाखाओं के लिये भर्ती किये गये थे। हम सभी रंगरूटों को अपना बोरिया-बिस्तर बांध कर उसी दिन दो बजे की स्पेशल गाड़ी से पूना कैम्प के लिये रवाना हो जाना पड़ा। और इस प्रकार मेरे साथ अन्य व्यक्ति भी बिना घरवालों का उत्तर पाये हुए ही वहां से चल दिये।

पूना पहुंचकर मैंने फिर एक पत्र अपने पिता जी को लिखा और उसमें पत्रोत्तर अपने नये पते पर भेजने की उनसे प्रार्थना की। वहां उन दिनों गरमी अत्यधिक पड़ने के कारण दुर्भाग्यवश मैं बीमार पड़ गया, और पड़ा भी तो ऐसा कि दो महीने तक चारपाई छोड़ कर उठ ही न सका। यद्यपि दफ्तर के बाबू लोगों को अपना पूरा परिचय देकर अनेक बार मैं उनसे प्रार्थना कर चुका था कि यदि मेरे नाम की कोई चिट्ठी-पत्री आये तो उसे तुरन्त ही चपरासी के हाथ से हस्पताल मेरे पास भेज दिया जाये, किन्तु नित्य सुबह से शाम तक अपनी चारपाई पर पड़े-पड़े इन्तजार करने के बाद भी दो महीने तक मुझे एक भी पत्र प्राप्त न हो सका। क्या यह

मानने वाली बात थी कि मेरे पिताजी ने इतने समय तक एक भी पत्र नहीं दिया होगा? क्या वही पिताजी, जिनकी कि मैं ही एक मात्र सन्तान था, मेरे साथ इतना कठोर व्यवहार कर सकते थे? कदापि नहीं, यह सब शैतानी मेरे उन्हीं रिश्तेदार महोदय की थी। अवश्य ही उन्होंने किसी गुप्त तरीके से मेरे अफसरों के कान भर दिये होंगे, ताकि पिताजी के साथ मेरा पत्र-व्यवहार कतई बंद हो जाये, उन्हें मेरा पता ही न मालूम हो सके।

दो महीने बाद ठीक होने पर मैंने पुनः अपना काम करना आरंभ कर दिया। घर की खबर पाने के लिये मेरा मन प्रायः हर समय ही छटपटाया करता था, इस लिये एक दिन सांयकाल छुट्टी के समय बिना किसी से पूछे अथवा कहे-सुने कैम्प से निकल कर मैं सीधा शहर की ओर चल दिया। रास्ते में सबसे पहिली, एक पान वाले की दुकान पड़ती थी। यद्यपि मुझे पान खाने का ज़रा भी शौक न था; किन्तु उस दुकानदार से मुझे अपना काम निकलवाना था, इस लिये जेब से दो पैसे निकाल कर मैंने उसे पान बनाने को कहा। वह पान लगाने लगा तभी मैंने दो-चार इधर-उधर की बातें करके उसके सामने अपनी इच्छा प्रकट करदी। बाबूलोगों पर सन्देह होने के कारण मैं अब अपनी चिट्ठी का जवाब वहां के पते से न मंगा कर सीधा इसी दुकानदार की मार्फ़त मंगाना चाहता था। पहले तो वह कुछ सकपकाया; परन्तु मेरे बहुत-कुछ समझाने-बुझाने पर अन्त में वह राजी हो गया।

मैंने उसी दिन दफ्तर वालों की पूरी बातें लिख कर पिताजी को दुकानदार की मार्फ़त चिट्ठी भेजने को लिख दिया।

आठवें दिन ही मुझे अपने पिताजी का उत्तर प्राप्त हो गया। बड़ी लम्बी चिट्ठी थी; शुरू से लेकर उस समय तक की पूरी बातें उसमें लिखी हुई थीं। उस चिट्ठी को पढ़ने से मुझे मालूम हो गया कि पिताजी को मेरे मिलिटरी में भर्ती होने से जितना दुःख पहुंचा, शायद जीवन में कभी भी उतना दुःख उन्हें नहीं पहुंचा होगा। इलाहाबाद से लिखा हुआ पत्र मिलते ही वे मुझे देखने के लिये वहां पहुंचे थे; किन्तु उनके वहां पहुंचने के पहिले ही मैं पूना चला आया था, इस लिये निराश होकर उन्हें पुनः लखनऊ लौट जाना पड़ा था। हां, लौटने के पहले उन्होंने अपने उन सम्बन्धी महाशय की बहुत बुरी दुर्गति की थी। घर से दो पत्र वे पूना कैम्प में भी भेज चुके थे; परन्तु उन दोनों पत्रों का पता मुझे आज तक भी न मिल सका। इस पत्र में यत्र-तत्र अनेक बार उन्होंने यही इच्छा प्रकट की थी कि यदि किसी प्रकार मैं इस मिलिटरी की नौकरी को छोड़ कर घर पहुंच सकूं तो बहुत अच्छा हो; किन्तु ऐसा होना अब नितांत असम्भव ही था। पांच हजार रुपया खर्च करके भी वे उस समय अपने एकमात्र पुत्र को सैनिक बन्धनों से मुक्त नहीं करा सकते थे। वह समय ही तब कुछ ऐसा था।

उसके बाद मेरे पिताजी ने बहुत-बहुत चेष्टायें मुझे अपने पास बुलाने के लिये कीं। परन्तु बड़े-बड़े अफसरों की सिफारिशें,

लम्बी-चौड़ी रक़म घूंस में देने के लोभ और अनेक प्रकार की खुशामदें; सभी कुछ-व्यर्थ गया। अंत में बाध्य होकर सन्तोष ही करना पड़ा और मेरा जीवन-क्रम पूर्ववत् चलता रहा। वही पी०टी० वही पैरेड, भागना--कूदना, गरम लोहा पीटना और वही हवाई-जहाजों की ट्रेनिंग। प्रायः छः मास तक नित्य यही सब कुछ चलता रहा।

छः महीने के बाद मैं स्वयं जहाज लेकर उड़ने लगा और धीरे-धीरे इसमें भी सिद्ध-हस्त होगया। अब मैं एक कुशल उड़ाका बन चुका था। जहाज पर बैठ कर उड़ने की जो झिजक थी वह अब दूर हो चुकी थी और मैं किसी भी प्रकार का हवाईजहाज स्वयं उड़ा सकता था।

२

दुर्भिक्ष के दिन

हवाईजहाज की ट्रेनिंग समाप्त होते ही हम आठ आदमियों को रणस्थल में भेज दिया गया। पश्चिम की अपेक्षा पूर्वीय युद्ध उन-दिनों जोरों पर था। हमारी कम्पनी का एक-एक मनुष्य ट्रेनिंग समाप्त करने के बाद उसी ओर भेजा जारहा था। पूना कैम्प से चल कर हम लोग कलकत्ते पहुंचे और वहां से दो दिन के बाद हमें चिटगाङ्ग भेज दिया गया। कलकत्ते में छत्तीस घंटे तक ठहरने का हमें अवकाश मिल गया था; किंतु इसी बीच जो वीभत्स दृश्य हमलोगों को अपनी आंखों से देखना पड़ा उसका वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर की बात है। अकाल-पीड़ित मानव लोथों से तमाम रास्ते भरे पड़े थे। क्षुधा-पीड़ित नर-नारियों तथा माँस-विहीन बच्चों के झुण्ड के झुण्ड एक मुट्ठी अन्न के लिये जिधर-तिधर मारे फिर रहे थे। न जाने किस जन्म के पाप का

फल उन अभागों को भोगना पड़ रहा था। ओह; ऐसा करुण दृश्य हृदय रखने वाला कोई भी मनुष्य क्या अपनी आंखों से देख कर भी चुप रह सकता था? मानव जीवन का इतना सस्ता मूल्य! बुद्धि रखने वाले मनुष्यों का ऐसा पतन! वाहरे भाग्य-चक्र तेरी गति!

इच्छा होती थी कि यथाशक्ति उन लोगों की सहायता करूं, सर्वस्व उन लोगों पर न्योछावर कर दूं। पर—पर मुझ जैसे क्षुद्र प्राणी में इतनी सामर्थ्य ही कहां? सामर्थ्य भी हो तो अवकाश ही कहां? और यदि अवकाश हो भी तो ऐसा पुनीत कार्य करने के लिए वहां रहने ही कौन देता है? पराधीन जीवन भी कोई जीवन है। न आसकते हैं कहीं न जा सकते हैं, न कुछ कर सकते हैं और न अपनी इच्छा से खा-पी ही सकते हैं। ऐसी दशा में भला कोई क्या किसी का उपकार कर सकता है? पराधीनता जो ठहरी! पराधीन देश में पैदा हुए, उसी देश का अन्न खा-खा कर इतने बड़े हुए—तभी तो हमारे शरीर की नस-नस में वही रक्त भरा हुआ है; जिसमें न बल है, न उत्साह! निर्जीव से पड़े-पड़े दूर देश-वासियों की आज्ञा मानने में ही हम अपना कल्याण समझते हैं। उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ कर सकना हमारे वश की बात नहीं रह गई है। धर्मभीरु देश का मैं रहने वाला, कैसे भला अपने स्वामी की आज्ञा के बिना कोई काम कर सकता हूं? मुझे पाप न लगेगा, कर्त्तव्य-च्युत न हो जाऊंगा? स्वामी-भक्त बने रहना ही हमारा धर्म है।

छत्तीस घंटे तक मैंने जो दृश्य कलकत्ते में अपनी आंख से देखे, उनसे मेरे रोंगटे खड़े होजाते थे। अभी भी जब मैं उन बातों को याद करता हूं तो मुझे रोमांच हो उठता है। ऐसा नारकीय दृश्य मैंने कभी देखना तो दूर रहा, अपने कान से सुना भी नहीं था। नर-कङ्कालों में मानव-प्राण कैद करके मानों तड़पने के लिये ही उन सड़कों, गलियों और फुटपाथों पर छोड़ दिये गये थे। ओह, ऐसा करुण दृश्य, नर-संहारक-दुर्भिक्ष क्या कभी किसी देश में पहले भी हुआ होगा ? पराधीन रहने का पाप ही मानो हमें इस रूप में आकर खाये जा रहा था। पेट की ज्वाला शान्त करने के लिये मां-बाप अपने प्यारे बच्चों को दस-दस पांच-पांच रुपये में बेच रहे थे। आह भगवान ! क्या हमारे देश में ही ऐसा होना था ? हमतो पहले से ही मरे पड़े थे; ऊपर से यह और दारुण दुख ! कब तक इन क्लेशों को हम सहन करते रहेंगे ? किंतु दोष हमारा ही है। जितनी शक्ति हम इन दुःखों और क्लेशों को सहन करने में लगाते हैं यदि उतनी शक्ति पराधीनता दूर करने में लगायें तो क्या फिर भी ऐसा हो सकता है।

एक दिन और एक रात—दूसरे दिन शाम तक भी, पूरे छत्तीस घंटे मैं इन्हीं बातों पर विचार करता रहा। बंगाल की दुर्दशा का करुण दृश्य मेरे हृदय पर पूरी तरह अपनी छाप जमा चुका था। हर पहलू से मैंने मन ही मन इन तमाम बातों पर विचार विमर्श किया था, हर संभव तरीके से मैंने दुर्भिक्ष की इस उलझी

हुई गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा की थी। गहराई तक पहुंचने पर मुझे इस नारकीय एवं नर–संहारक–दृश्य का कारण विदित हुआ था एक मात्र पराधीनता—हां केवल पराधीनता के कारण ही तो आज हमें अपने देशवासियों की ऐसी दुर्दशा देखने को नसीब हुई थी। कहते हैं जब डाक्टर किसी रोगी को देखकर उसके रोग का कारण जान जाता है तो उसके लिये रोग की चिकित्सा करना बड़ा सुगम हो जाता है। तो क्या दुर्भिक्ष का कारण जान लेने पर भी हमें चुपचाप बैठे रहना चाहिये? क्यों? आखिर क्यों? मानव प्राण क्या इतना ही सस्ता और व्यर्थ है जो उसे यूं ही नष्ट होने दिया जाये? हमारे बंगवासी भाई क्या हमारे ही पूर्वजों की सन्तान नहीं हैं जो उन्हें भूख से मरते हुए देख कर भी हमारा हृदय न पसीजे?

मेरा हृदय भर उठा इन सब बातों को सोचते, विचारते और देखते हुए। मन में एक अग्नि-सी प्रज्वलित हो उठी इन लोगों की दुर्दशा का ध्यान आते ही। जी में आया कि नौकरी छोड़कर अपना जीवन उत्सर्ग करदूं इन लोगों की सहायता के लिये! पर क्या करूं मजबूर था। मिलिटरी के कड़े नियमों का उलंघन करना मानो जान-बूझ कर अपनी मृत्यु का आवाहन करने के तुल्य था। जकड़ा हुआ था परवशता की सुदृढ़ जंजीरों के फन्दे में। अपनी इच्छानुसार कुछ कर सकना मेरे लिये न केवल कठिन था, बल्कि सर्वथा असम्भव ही था उस समय। रणस्थल में जाने वाले सिपाहियों को न छुट्टी ही मिलती है और न उनकी नौकरी ही

छूट सकती है। उस दिन प्रथम बार मुझे अपने कॉलेज का स्वतन्त्र-जीवन याद करके रोना आगया। ओह, जान-बूझकर मैंने अपने पांव में स्वयं कुल्हाड़ी मारी थी।

दूसरे दिन सन्ध्या तक भी मैं इस गुत्थी को न सुलझा सका। बंगवासी भाइयों की सहायता के लिये मैं अपना सर्वस्व न्योछावर करने के लिये भी तैयार था। पर मिलिटरी के नियम ऐसे नहीं थे जो मैं उनसे यूं ही छुटकारा पा जाता। मेरे पिताजी रायसाहब थे, सरकार में उनका मान-सम्मान सभी कुछ था। न जाने कितनी सेवायें; कितने कष्ट और कितने धन की आहुति देने के बाद उन्हें सरकार से यह पदवी प्राप्त हुई थी। मेरे लिये, अपने एकमात्र पुत्र को इस नौकरी से अलग करने के लिये उन्होंने क्या नहीं किया था! भर्ती होने की सूचना पाते ही तन, मन, धन, से वे मुझे इस नौकरी से छुड़ाने के लिये प्रयत्नशील हो गये थे। सहस्रों रुपया खर्च करने के लिये तैयार होने पर भी क्या वे अपनी इच्छा को पूरी कर पाये थे? सरकार द्वारा प्रदान की हुई थोथी पदवी का तनिक भी तो प्रभाव न पड़ सका था; और अंत में मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ कर उन्हें सन्तोष का शीतल दीर्घ निःश्वास खींच कर चुप रह जाना पड़ा था। यह सब जान कर भी यदि मैं अब त्याग-पत्र दे बैठता तो क्या वे लोग मुझे छोड़ देते? कदापि नहीं।

कलकत्ते में व्यतीत किया हुआ वह अल्प-समय जीवन भर भी मैं न भूल सकूंगा। अपने देशवासियों की ऐसी दुर्दशा न

मैंने पहले कभी देखी थी न सुनी थी। छत्तीस घंटे मुझे छत्तीस वर्ष से भी अधिक मालूम होने लगे थे। परवशता से कुछ न कर सकने के कारण जी चाहता था कि वहां एक क्षण भी न ठहरूं। परन्तु मिलिटरी के नियम मुझे जकड़े हुए थे। वहां का 'डिसिप्लिन' मेरे अन्तः करण को मसोसे डाल रहा था। हृदय में विद्रोह की भावनायें जागृत हो उठतीं; परन्तु हठात् परिस्थिति का भान होते ही उठती हुई इच्छाओं का दमन करना पड़ता—विद्रोह की ज्वाला धधकने के पूर्व ही बरबस शान्त कर देनी पड़ती। ओह, इस बात का अनुभव मुझे उन्हीं दिनों हुआ था कि परतन्त्र देश के निवासियों का हृदय स्वभावतः ही दुर्बल हो जात है! साहस और पुरुषार्थ के वे प्राकृतिक रूप से दिवालिये बन जाते हैं। स्वाधिकारों को प्राप्त करने के लिये मुख खोलना तो दूर रहा, अन्याय के प्रति बोलने में भी उन्हें भय लगने लगता है। वही दशा तो अब मेरी भी थी। इतने ही दिनों में पूरा गुलाम बन चुका था।

जैसे-तैसे करके छत्तीस घंटे पूरे हुए और दूसरे दिन हमें सन्ध्या समय कलकत्ता छोड़ने की आज्ञा सुना दी गई। स्यालदा स्टेशन से हमारा डब्बा एक अन्य स्पेशल गाड़ी के साथ जोड़ दिया गया। मैंने सोचा था कि कलकत्ता छोड़ते ही मैं उस बीभत्स दृश्य को भूलने की चेष्टा करूंगा। किन्तु ऐसा न हो सका। हमारी गाड़ी ज्यूं-ज्यूं पूर्वी बंगाल की ओर बढ़ती जारही थी त्यूं-त्यूं

वह नर-संहारक दृश्य और भी अपना उग्र रूप धारण करता जारहा था। मार्ग में अनेक स्थान पर दुर्भिक्ष-पीड़ित नर-नारियों एवं वस्त्र-विहीन अस्थी-पिंजर-युक्त नाममात्र को जीवित छोटे-छोटे बच्चों ने चलती हुई गाड़ी से कुछ प्राप्त होने की आशा में अपने सूखे हुए हाथों को फैलाया। आंसुओं से भीगे हुए मुख एकबारगी ही खुल पड़ते, रोते गिड़-गिड़ाते, यथाशक्ति चीखते चिल्लाते और अन्न के लिये याचना करते। कोई दयावान यात्री एक मुट्ठी अन्न अथवा एकआध पैसा डाल देता तो उस पर सभी दौड़ कर टूट पड़ते—लड़ते झगड़ते और एक-दूसरे की जान लेने को तैयार हो जाते थे। बड़ी बुरी अवस्था थी उन लोगों की, शहर की अपेक्षा गांव वालों की।

कलकत्ते से चले हुए हम लोगों को सात-आठ घंटे से भी ऊपर हो चुके थे। कृष्णपक्ष की काली निशा चारों ओर अपना भयानक रूप धारण किये हुए थी। अर्द्ध रात्रि का समय होगा। अधिकांश यात्री गाड़ी के मंद हिलोरों का आनन्द लेकर प्रगाढ़ निद्रा में सो चुके थे, कुछ अपनी-अपनी जगहों पर बैठे ऊंघ रहे थे और कुछ ऐसे भी थे जो अभी तक उपन्यास आदि पढ़ कर अपना मनोरंजन कर रहे थे। ऐसे ही लोगों की श्रेणी में मैं भी था क्योंकि मुझे रेल में सफर करते समय नींद प्रायः कम ही आती है। गाड़ी अपनी द्रुत-गति से घोर अंधकार को चीरती हुई क्रमशः आगे बढ़ रही थी। मेरे पास कल की तारीख का 'आनन्द बजार'

पत्रिका के अतिरिक्त और कोई भी पुस्तक पढ़ने योग्य न थी। उसे मैं कल शाम तक ही आद्यन्त पढ़ कर समाप्त कर चुका था। पठन-सामग्री के अभाव के कारण मैं पुनः अपने उन्हीं खोये हुए विचारों में डूबने-उतराने लगा। मेरे सामने दूसरी सीट पर मेरी ही कम्पनी का एक नवयुवक लेटा हुआ था। उसके हाथ में कहानी प्रधान मासिक पत्रिका 'माया' थी, जिसे वह पढ़ते पढ़ते सो गया था।

अपने विचारों से छुटकारा पाने के लिये मैंने 'माया' की कहानियों से दिल बहलाना ही अधिक उचित समझा। अतएव उस नवयुवक के पास रखी हुई पत्रिका उठाने के लिये मैंने ज्यूं ही अपना हाथ उस ओर बढ़ाया कि सहसा एक धक्का इस जोर से मुझे लगा कि मैं अपनी सीट से लुढ़क कर नीचे गिर पड़ा और उसी समय मैंने देखा, न केवल मेरी ही वह दशा हुई थी बल्कि उस डब्बे के अन्य यात्री भी लुढ़क कर नीचे गिर पड़े थे। अब मुझे ज्ञात हुआ तमाम गाड़ी में उसी प्रकार का धक्का लगने के कारण यात्री लोग उठ उठ कर आश्चर्य से एक-दूसरे का मुख ताकने लगे थे। चार-पांच मिनट तक इसी प्रकार होता रहा; और अन्त में अनेक भीषण झटके लगने के बाद गाड़ी भी रुक कर खड़ी हो गई। इस अप्रत्याशित घटना से लोग भय और विस्मय से एक-दूसरे को पूछने लगे। परन्तु कारण किसी को भी विदित न था।

गाड़ी रुकते ही बहुत से मनुष्य उत्सुकतावश अपनी-अपनी खिड़कियों से बाहर झांकने लगे। सर्वत्र भयानक अंधकार छाया होने के कारण पास की वस्तु देखना भी कठिन हो रहा था। गाड़ी चलने में अधिक विलम्ब होता देख मुझे भी कुछ उत्सुकता सी उत्पन्न हो उठी। पहले तो मैंने अपनी जगह पर बैठे-बैठे ही पता लगाना चाहा, परन्तु जब किसी ने भी मुझे गाड़ी खड़ी होने का कारण नहीं बताया तो मैं अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ और दरवाजे पर खड़ा हो बाहर की ओर झांकने लगा। घोर अंधकार के कारण अन्य लोगों की तरह मुझे भी कोई विशेष बात नहीं मालूम हो सकी। प्रायः सभी लोगों की उत्सुकता दम पर दम बढ़ती ही जारही थी। बहुत से मनचले नवयुवक अबतक गाड़ी से नीचे भीउतर चुके थे। हाथ-पांव बांधे मुझसे वहां खड़ा न रहा गया और तुरंत ही गाड़ी से उतर कर अन्य लोगों की पार्टी में जा मिला। हमारे डब्बे से आगे बीच में तीन डब्बे छोड़ कर चौथा कम्पार्टमेंन्ट एक फर्स्ट क्लास का था। उसी के आगे इस समय लोगों की भीड़ लगी हुई थी। अंधकार में कुछ दिखाई तो देता नहीं था; फिर भी लोग एक-दूसरे के ऊपर चढ़े जारहे थे—सभी कौतुहलवश आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे थे।

यह एक स्पेशल गाड़ी थी—जिसके सभी डब्बे मिलिटरी के सिपाहियों से भरे हुए थे। ऐसी गाड़ियां युद्ध के दिनों में ही छोड़ी जाती हैं, क्योंकि रण-स्थल में जाने वाले सिपाहियों की अधिकता के कारण स्पेशल गाड़ियों से ही काम निकाला जाता है।

तमाम डब्बे सैनिकों से भरे होने पर भी केवल वही डब्बा ऐसा था, जिसमें न तो कोई मिलिटरी का अफसर ही था और न मिलिटरी के साथ उसका कोई सम्बन्ध ही था। पूछने पर ज्ञात हुआ कि उसमें मणिपुर राज्य के प्रधान मंत्री की लड़की सफर कर रहीं थीं; उन्हीं के साथ कोई दुर्घटना हो गई है। मणिपुर राज्य का नाम सुनते ही मेरी उत्सुकता और भी बढ़ गई। यह नाम अनेक बार मैं समाचार पत्रों में पढ़ चुका था। उस राज्य के प्रधान मंत्री की लड़की स्वयं हमारी गाड़ी में यात्रा कर रही थीं-सुन कर पहले तो मैं क्षण भर तक आश्चर्य-विमूढ़-सा खड़ा-खड़ा ताकता रह गया; किंतु फिर सहसा मुझे अपनी स्थिति का भान हुआ और तुरन्त ही संभल कर पूरी बातें जानने के लिये लोगों की बातें सुनने लगा। डब्बे के भीतर इस समय चार-पांच व्यक्ति थे। गार्ड भी उस समय अपने हाथ में जलती हुई हरीकेन थामे उन लोगों के साथ खड़े हुए मामले की जांच कर रहे थे।

पूरा हाल जानने के लिये मैं अत्यधिक उत्सुक हो उठा था। अतएव लोगों की भीड़ को चीरता हुआ आंधी-तूफान की तरह मैं आगे बढ़ गया। यद्यपि उस डब्बे के भीतर किसी को प्रवेश करने की आज्ञा नहीं थी, तथापि मैं धड़धड़ाता हुआ उसके अन्दर चला गया। देशी राज्य के वस्त्रों से सुसज्जित दो काले-काले देव तुल्य सिपाहियों ने दरवाजे पर मुझे रोका भी; किन्तु मालूम नहीं किस अन्तर्प्रेरणा से बाध्य होकर मैंने उनकी परवाह नहीं की और उन दोनों को ठेल कर मैं अन्दर चला गया। रॉयल एयर फोर्स

की बो-शर्ट पहिने होने के कारण वे मेरा विरोध न कर सके। डब्बे के भीतर अंधकार लेशमात्र भी नहीं था। फर्स्ट क्लास का डिब्बा—और फिर राजवंशियों के लिये सुरक्षित, आराम की सभी आवश्यक वस्तुएँ उसमें मौजूद थीं। दूसरे डब्बों में केवल एक ही बिजली-बत्ती जलने का प्रबन्ध था; जबकि इसमें चार बत्तिएँ थीं, और चारों ही शक्तिवान प्रकाश देने वाली थीं। तीन बिजली के पंखे, ड्रेसिंग टेबिल-उसके ऊपर एक बड़ा सा आईना! सभी चीजें करीने से सजी हुई थीं—एक भी अभाव वहां नहीं खटक रहा था। फर्स्ट-क्लास का डब्बा जो ठहरा!

मैंने देखा उस डब्बे में कुल आठ व्यक्ति थे। दो सिपाही, एक गार्ड, चौथा मैं—मन्त्री-कुमारी उनके साथ एक जैन्टिलमैन और दो अंग्रेज! वहां की स्थिति देखने से स्पष्ट मालूम होता था कि उन दोनों अंग्रेजों के साथ ही मंत्री कुमारी और उस जैन्टिलमैन का झगड़ा हो रहा था। गार्ड साहब के पूछने पर उस भद्रपुरुष ने बताया—"हम लोग मणिपुर रियासत के रहने वाले हैं। यह हैं मेरी छोटी बहन—प्रभातकुमारी, मणिपुर के प्रधान मंत्री की एकमात्र कन्या! और मैं हूं वहां के कोषाध्यक्ष राय नरेन्द्रचौधरी का ज्येष्ठ पुत्र! किंतु हम दोनों परस्पर भाई बहन लगते हैं। इनके पिताजी मेरे फूफा हैं और मेरे पिताजी इनके मामा! हम दोनों कलकत्ता यूनीवर्सिटि में पढ़ा करते थे। आज अकस्मात् इनके पिताजी की ओर से हमें एक सूचना तार द्वारा प्राप्त हुई, जिसमें तुरंत मणीपुर पहुंचने के लिये हमें आदेश दिया गया था। उस

समय इधर को जाने वाली कोई गाड़ी न थी; मजबूर होकर हमें अपना डब्बा स्टेशन मास्टर से कह कर इसी गाड़ी के साथ लगवाना पड़ा। अभी तक हम लोगों के साथ कोई खास बात नहीं हुई थी; किंतु पिछला स्टेशन जो शायद मेहरपुर का था—उस पर गाड़ी के रुकने पर यह दोनों दुष्ट हमारे डब्बे में चढ़ आये। पहले तो ये लोग कुछ अण्ड-बण्ड बकते रहे, किंतु जब मैंने इन्हें फटकार बतलाई तो ये लोग दुष्टता पर उतर आये और बलात्कार करने केलिये तैयार हो गये। उस समय हमारे दोनोंसिपाही 'सर्वेन्ट' के डिब्बे में थे; इसी लिये मुझे जंजीर खींच कर गाड़ी रोकने के लिये मजबूर होना पड़ा। अब मैं उस समय तक इन दोनों को अपनी कैद में रक्खूंगा जब तक कि बदमाशी का इन्हें पूरा मजा नहीं मिल जायगा।"

और इसके बाद उन्होंने अपने सिपाहियों से कह कर उन दोनों को रस्सी में बंधवा दिया। गार्ड ने पूरा बयान लिखकर अपनी नोटबुक में उनके हस्ताक्षर करा लिये और गाड़ी चलाने की आज्ञा देने के लिये अपने डब्बे की ओर चला गया। मैं भी चुपचाप उतर कर अपने डब्बे में चला आया। दूसरी क्षण गाड़ी पुनः अपनी उसी चाल से चलने लगी। बंगाल के दुर्भिक्ष-पीड़ितों की दशा भूलकर मैं अब किसी और ही विचारों में डूबने-उतराने लगा था।

३

माणिकपुर में

कलकत्ता में स्यालदा स्टेशन से लेकर गोआलन्दा तक हम लोगों ने अपनी स्पेशल गाड़ी से यात्रा की; उसके बाद पद्मा नदी के सुविस्तृत गर्भ में जहाज द्वारा हमारी यात्रा प्रारम्भ हुई। चांदपुर पहुंच कर हमें चार घंटे तक ठहरना पड़ा। फिर भोजनादि करके दो बजे के लगभग एक अन्य स्पेशल गाड़ी से हम लोग चिट्टगाङ्ग के लिये रवाना होगये। लकसम और फेनी होते हुए संध्या तक हम लोग चिट्टगाङ्ग पहुंच गये। मार्ग में और कोई भी दुर्घटना हम लोगों के साथ नहीं हुई थी। हां, मणिपुर राज्य की मंत्री-कुमारी के साथ जो दुर्घटना मेहरपुर स्टेशन के करीब हुई थी, उसे मैं अभीतक भी भूल नहीं सका था। वे दोनों अंग्रेज हमारी ही कम्पनी के थे। एक को तो मैं पूना ही से

जानता था; क्योंकि वह डोगरा रैजीमेन्ट में कैप्टन की पदवी पर था, किंतु दूसरा मेरे लिये उस समय तक सर्वथा अपिरिचित था। यद्यपि हमपेशा होने के नाते मुझे उन लोगों के साथ अवश्य ही कुछ सहानुभूति होनी चाहिये थी, पर न जाने क्यों मेरे मनमें उन लोगों के प्रति आन्तरिक घृणा के भाव पैदा हो गये थे— शायद इसलिये कि वह लोग विदेशी थे और मंत्री-कुमारी स्वदेश-बासिनी! यूं किसी विदेशी के प्रति अकारण ही मुझे घृणा भी नहीं होती; किंतु वे लोग तो स्वभावत: ही दुष्ट प्रकृति के थे, घृणित आचरण होने के कारण ही उन से मैं घृणा करने लगा था। मंत्री-कुमारी के साथ वह लोग बलात्कार करना चाहते थे. और इसीलिये मिलिटरी-कोर्ट से उन्हें अपमानित होने के साथ-साथ दण्डित भी होना पड़ा।

युद्ध की दृष्टि से चिट्टगाङ्ग एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान है। सुदूर पूर्व में रहने वाले विदेशी शत्रुओं के आक्रमण का भय वहां हर समय बना ही रहता है। बर्मा की सीमा वहां से पचास-साठ मील पूर्व की ओर हट कर माणिकपुर नामक एक स्थान से आरंभ हो जाती है। इसी लिये वहां पर शक्तिशाली सेना का हर समय होना नितांत आवश्यक समझ कर सरकार ने अपना सैनिक-बल विशेषरूप से वहां संगठित किया है। अनेकानेक शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित सेनाओं से माणिकपुर भरा हुआ है। भारत और बर्मा की सीमा पर स्थित यह नगर सैनिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण कहा जासकता है। कारण, सीमा-प्रान्त पर

होने के कारण सुदूरपूर्व से आनेवाले आक्रमणकारियों को स्थल-मार्ग से इसी ओर को आने के लिये बाध्य होना पड़ता है। अन्यथा इसके ऊपर तो लुशाई पर्वतों की सुदृढ़ श्रेणिएं भीषण से भीषण एवं शक्तिशाली आक्रमणकारी का भी दर्प-चूर्ण करने के लिये गगन-चुम्बी चोटियों को ऊपर उठाये खड़ी हैं। पूर्व में यहीं से अराकान शुरू हो जाता है। यूं तो हमारे देश की रक्षा के लिये स्वयं प्रकृति ने ही ऐसा अच्छा प्रबंध कर रखा है कि हमें अपनी रक्षा के लिये तनिक भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं रह जाती; तो भी राजनीतिक दृष्टि से हमारे लिये भी कुछ न कुछ प्रबन्ध करना अनिवार्य हो जाता है। इसी लिये वहां सैनिक-बल का इतना संगठन किया गया है।

पूना से चलते समय हमारी कम्पनी के कुल मिलाकर बीस जवान हमारे साथ आये थे; किंतु यहां पहुँचते-पहुंचते हमलोग केवल पांच ही साथी शेष रह गये थे। इसका कारण यह नहीं कि शेष पन्द्रह साथी हमसे अनायास ही पृथक होगये थे, बल्कि यूं कहना चाहिये कि कलकत्ता से रवाना होने के बाद से ही उन लोगों की ड्यूटिएं लगनी आरंभ हो गई थीं। कुछ मणिपुर तथा इम्फाल की ओर भेज दिये गये थे और कुछ नोआखाली और चिट्टगाङ्ग में भेज दिये गये थे। उन पन्द्रह व्यक्तियों में से तीन जवान ऐसे भी थे जिन्हें वहां की जलवायू अनुकूल न होने के कारण मिलिटरी-हस्पताल की हवा खाने के लिये बाध्य होना पड़ा था। तात्पर्य यह कि हम पांच व्यक्तियों पर ही हमारे उच्च

अधिकारियों की ऐसी कृपा-दृष्टि हुई कि जो इतनी दूर लाकर देश की सीमा पर ला पटका। पांच में से तीन तो साधारण सेना के सिपाही मात्र थे, और शेष दो—रहमान और मैं, हवाई सेना के उड़ाकू थे। रहमान मेरा सहायक था। ट्रेनिंग के दिनों से ही मेरे साथ रहता था। एक प्रांत और एक ही शहर के निवासी होने के कारण उसे मेरे साथ काफी सहानुभूति थी। ट्रेनिंग समाप्त होने पर जब मुझे माणिकपुर जाने का हुक्म हुआ; तभी उसने भी उच्चाधिकारियों से कह सुन कर अपनी बदली मेरे साथ करा ली थी।

माणिकपुर पहुंचने के दूसरे दिन से ही हमने अपना काम संभाल लिया। ए०डी० नम्बर ३१२ का हवाईजहाज, जिसमें डबल एंजिन लगे हुए थे, मुझे चलाने को दिया गया। ईश्वर की कृपा से रहमान वहाँ पहुंच कर भी अलग न होसका। अधिकारियों से कह-सुन कर उसने मेरे ही जहाज पर सहायक-उड़ाकू की जगह पकड़ ली। उसके अतिरिक्त मेरे जहाज पर काम करने वाले दो व्यक्ति और भी थे—एक एयर गनर और दूसरा कैमरामैन। हद से ज्यादा काला होने के कारण पहले मैं उनको अफ्रीकन समझने लगा था; किंतु बाद में मालूम हुआ कि उनमें से एक मद्रासी तथा दूसरा बंगाली था। हवाई तोप पर काम करने वाले मद्रासी सज्जन का नाम रामकुमाराप्पा अय्यर था और फ़ोटो खींचने वाले बंगाली महाशय हरेन्द्र मुखोपाध्याय के नाम से प्रसिद्ध थे। हम चारों व्यक्ति एक ही स्थान और

विशेषतया एक ही हवाईजहाज पर कार्य करने के कारण शीघ्र ही आपस में घनिष्ट मित्र बन बैठे। सुख-दुःख में एक-दूसरे की सहायता करना तो मुख्य कर्त्तव्य हमारा हो ही गया था; पर साथ ही अन्य बातों में भी चाहे वह व्यक्तिगत हो अथवा अन्य किसी विषय पर हो. परस्पर सलाह-मशविरा अवश्य कर लिया करते थे। घनिष्टता के साथ ही साथ मित्रता भी हम लोगों की उत्तरोत्तर वृद्धि करती जारही थी।

सन् १६४५ ई० का जनवरी मास प्रायः समाप्त हो चुका था। यद्यपि उस स्थान पर शत्रु के आक्रमण का उस समय कोई भय नहीं था तथापि सुदूरपूर्व से प्राप्त सरकारी सूचना के अनुसार वहां पर भी खतरा उत्तरोत्तर बढ़ता ही जारहा था; और इसी लिये हम लोगों को हर समय सतर्क एवं विशेष सावधानी से रहने की आज्ञा सुना दी गई थी। इतना ही नहीं बल्कि उच्चाधिकारियों ने अपनी कम्पनी के कुछ हवाईजहाजों को प्रायः हर समय उड़ कर इधर-उधर की खबर लेने के लिये खासतौर पर तैनात कर दिये थे। इन्हीं उड़कर शत्रु का पता लगाने वाले गश्ती जहाजों में से एक हमारा जहाज भी था। प्रायः रोज ही हम लोगों को अपने कैम्प से निकल कर आकाश में दूर-दूर तक इधर-उधर का चक्कर मारना पड़ता। कभी अराकान के जंगलों के ऊपर से, कभी लुशाई-पहाड़ की घाटियों के बीच से और कभी-कभी रङ्गामती की ओर नील पर्वत की सात हजार एक सौ फीट ऊंची चोटियों के ऊपर से होकर हम लोगों का शक्तिशाली जहाज

चक्कर लगाने लगा। मिस्टर हरेन्द्र ने अनेक महत्वपूर्ण स्थानों के फोटो खींच कर अपने पास जमा कर लिये। नित्य का हमारा यही काम था। कभी हमलोग दिन के समय उड़ते और कभी रात के समय निकल पड़ते थे।

उस दिन सन्ध्या-काल से ही बादल छाये हुए थे। हमारी दिन की डियूटी का नम्बर निकल चुका था और अब रात्रि को उड़ने की हमारी बारी थी। भोजनादि से निवृत होकर नौ बजे तक हम चारों व्यक्ति तैयार होकर हवाईजहाज के पास आ पहुंचे। एंजिन स्टार्ट करने के पहले एक बार रहमान ने चारों-ओर घूम कर जहाज का भली प्रकार निरीक्षण किया और जब उसे पूरा इत्मीनान हो गया तो हम लोगों को चलने का संकेत करके स्टार्टर के पास जा पहुंचा। मुझे रहमान के ऊपर इतना भरोसा था कि उसके किसी भी कार्य की त्रुटि निकालने की कभी इच्छा ही नहीं होती थी, और यदि इच्छा भी होती तो वह इसका मुझे अवसर ही कब देता था। एंजिन की देखभाल और समस्त जहाज के कल-पुर्जों की सफाई इत्यादि वह इस सुचारू रूप से करता कि मुझे कभी भी उसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता न पड़ती। यह सब कार्य वह इस लिये ऐसे उत्तम ढंग से नहीं करता था कि वह मेरा असिस्टेंट था, बल्कि उसे मुझसे विशेष प्रेम था और अपने बड़े भाई की दृष्टि से ही वह मुझे देखता और वैसा ही मेरा आदर भी किया करता। मिलिटरी में हिन्दु-मुस्लिम आदि जाति-विभेद का तो यूं भी विशेष कोई

ख्याल नहीं करता, किंतु उसने तो वास्तव में एक आदर्श ही कायम कर रखा था।

जिस समय हम चारों व्यक्ति अपने जहाज को लेकर उड़े उस समय गगन-मण्डल मेघाच्छादित होने के कारण भीषणरूप से अंधकार पूर्ण हो उठा था। सुदूर पूर्व में उठती हुई आंधी क्रमशः उग्ररूप धारण करती जा रही थी। यद्यपि साधारण उड़ाके को ऐसे समय अपने जहाज को लेकर किसी प्रकार भी उड़ने का साहस नहीं हो सकता था, किंतु हमारे लिये तो यह एक मामूली-सी बात थी। न जाने कितनी बार ऐसी-ऐसी आंधियों का मुकाबला कर चुके थे। चलते समय एक बार मिस्टर अय्यर ने कहा भी—"भई, आज तो कुछ लक्षण शुभ नहीं दिखाई दे रहे हैं।" किंतु इन बातों का भला हमारे लिये मूल्य ही क्या हो सकता था? हम कोई अपनी इच्छा से आकाश की सैर करने तो निकले ही नहीं थे—हमें तो अपनी ड्यूटी पूरी करनी थी। सरकारी हुक्म जो था. हम लोग पराधीन जो थे ना? वृष्टि हो, आंधी हो, तूफान हो—भले ही सिर पर बिजली क्यों न कड़कड़ाती हुई हो, हमें तो हर अवस्था में आज्ञा-पालन करने के लिये बाध्य होना ही पड़ेगा, नहीं तो सिर गोलियों की बौछार से उड़ा दिया जायगा। मिलिटरी का डिसिप्लिन और उसके कायदे-कानून ऐसे नहीं, जिसके आगे माता-पिता, बहन-भाई, बन्धु-बान्धवों का प्रेम तनिक भी विचलित कर सके।

हवाई अड्डे से हम लोगों ने उड़ना आरंभ किया और क्रमशः पृथ्वी से दूर होने लगे। देखते-देखते समस्त नभ-मण्डल हमारे शक्तिशाली जहाज की भर-भराहट एवं घोर गर्जना से भर उठा। ऊंची-ऊंची पर्वत-मालायें हमारे नीचे कुण्डलाकार में घूमती-सी दिखाई देने लगीं। लता-निकुंज एवं विशाल वृक्षों से भरे हुये बड़े २ जंगल भयानक तिमिरावरण में काले-काले धब्बे मात्र ही ज्ञात होने लगे। यत्र-तत्र सर्वत्र भीषण अंधकार के अतिरिक्त और कहीं कुछ भी नहीं दिखाई देता था।

ज्यूं-ज्यूं हम लोग पृथ्वी से ऊंचा उठते जाते त्यूं-त्यूं वायू का वेग पूर्ण रूप से बढ़ता जाता था, जितना अधिक हम अपने कैम्प से दूर होते जारहे थे उतना ही अधिक आंधी अपना उग्र रूप धारण करती जा रही थी। यद्यपि तीव्रगामी पवन के साथ धूलकणों का लेशमात्र भी कहीं चिन्ह नहीं था तथापि वेग इतना अधिक बढ़ता जा रहा था कि जहाज पर कन्ट्रोल करना उस समय कठिन ही नहीं प्रत्युत असंभव-सा हो उठा था। अनेक बार हमें आकाश के भिन्न भिन्न भागों में उड़ने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका था और न जाने कितनी बार वायु के तीव्र थपेड़ों का मुकाबला करके हम लोग सही सलामती से अपने कैम्प में वापस आगये थे, किन्तु ऐसा दुर्दिन अभी तक कभी नहीं आया था। चलते समय सोचा था कि आंधी का वेग शीघ्र ही कम होकर वायुमण्डल शांत पड़जाएगा, पर ऐसा न होकर परिस्थित सर्वथा इसके प्रतिकूल थी। सनसनाता हुआ पवन का भयङ्कर झोंका इस जोर से आकर जहाज के साथ

टकराता कि वह लोटन कबूतर के समान कलाबाजिएं करने लगता। मेरे आदेश की प्रतीक्षा किये बिना ही रहमान इस समय पूर्ण सतर्कता से एंजिन पर काबू पाने में लगा हुआ था।

आंधी पूर्व से पश्चिम की ओर चल रही थी, अतएव हमारा जहाज भी बराबर उसी ओर को उड़ा चला जा रहा था। चेष्टा करने पर भी हम उसका रुख पलट नहीं सकते थे। रहमान और मैं यथाशक्ति जहाज को कन्ट्रोल में रखने की चेष्टा कर रहे थे, परन्तु हम लोगों की तमाम कोशिशें बेकार होती जा रही थीं। प्रकृति का कोप मानों हमारे ही ऊपर फट पड़ा था।

मिस्टर अय्यर की बुरी दशा थी। भय के कारण उसका काला मुख-मण्डल नीला हो उठा था। एयर गन की लम्बी नली के ऊपर कोहनी टेके वह एक टक सामने की ओर देखता जा रहा था। रहमान और मि० हरेन्द्र मुखोपाध्याय का साहस वास्तव में सराहनीय था। वे दोनों इस विपद के समय भी अय्यर के भयभीत चेहरे की ओर देख-देख कर मुस्करा उठते थे। दो-एक बार हरेन्द्र ने छींटे कसते हुए कहा भी—"भई, जहाज पर नौकरी करने के बाद विपद आने पर घबराने से तो कहीं अच्छा हो कि मनुष्य चूड़ियां पहन कर अपने घर ही बैठा रहे!" परन्तु हरेन्द्र की बातों को मानों अय्यर ने सुना ही न हो। वह तो बस अपने सम्मुख जहाज की हेडलाइट के तीव्र प्रकाश की ओर ही एकटक दृष्टि जमाये देखता रहा। जान पड़ता था जैसे पाषाण की मूर्ति बना कर वहां

स्थापित करदी गई थी। यद्यपि रहमान और हरेन्द्र मिस्टर अय्यर को लक्ष्य करके उपहास कर बैठते थे जरूर, किंतु यदि सच पूछा जाये तो इस घोर विपद के समय मन उनका भी चंचल हो उठा था। जहाज को नीचे उतारने का कहीं भी ठौर नजर नहीं आता था। चारों ओर पहाड़ ही पहाड़ थे। नीचे कहीं रिक्त स्थान दिखाई भी पड़ जाता तो वहीं भीषण जंगल होते—मैदान का कहीं नाम भी नहीं था।

सहसा हरेन्द्र ने अपनी हाथ-घड़ी की ओर दृष्टिपात करके कहा,—"ओह, कैम्प से चले हुए हम लोगों को पांच घन्टे हो चुके हैं!" "पांच घंटे?" विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देख कर रहमान ने प्रश्न किया; फिर हिसाब-सा लगाते हुए बोला,—"तो इसका मतलब यह है कि हम लोग माणिकपुर से पूरे तीन सौ पिछत्तर मील के फासले पर उत्तर की ओर आ पहुंचे हैं!"

अब मेरा ध्यान भी उन दोनों की ओर आकृष्ट हुआ। रहमान का अन्दाज गलत था, इस लिये मैंने पूछा,—"यह तुम कैसे कह सकते हो?

वह बोला,—"हवाई अड्डे से ऊपर उठते ही माईलोमीटर की सुई पछत्तर मील प्रति घंटा पर पहुंच चुकी थी और तबसे अभी तक हम बराबर उसी स्पीड से उड़े चले आरहे हैं। इस हिसाब से पांच घंटे में पौने चार सौ मील का सफर तय करना कोई आश्चर्य की बात नहीं!"

"हां, यह हिसाब ठीक होसकता था उस समय जब कि आंधी का वेग हमारे जहाज की गति को और भी अधिक न किये होता," मैंने उसे समझाते हुए कहा,—"तुम्हें मालूम होना चाहिये कि वायु का वेग हमारे जहाज को पच्चीस प्रतिशत स्वाभाविक चाल से भी अधिक ले जारहा है।"

तब तो हम साढ़े चार सौ मील के लगभग........ओह ! यह क्या हुआ ?" सहसा कहते-कहते वह रुक गया और सामने की ओर देखकर पुनः बोला,—"जान पड़ता है हमारे जहाज की हेड-लाईट का बल्ब फ्यूज हो गया है। देखिये सामने कितना अंधेरा है !"

हमारा ध्यान सामने की ओर आकृष्ट हुआ ही था कि इतने में अय्यर चिल्ला उठा,—"ओह भगवान, कैसा विशालकाय देव खड़ा है !"

और उसके कहते न कहते ही एक भयानक आवाज़ के साथ २ हमारा जहाज इस जोर से किसी वस्तु के साथ टकराया कि हम लोग भीषण चीत्कार करते हुए एक-दूसरे के ऊपर गिर पड़े और दूरे क्षण ही संज्ञा हीन होकर सुध-बुध खो बैठे।

४

नागापर्वत के शिखर पर

"हूंहूंहूंहूं, सोने भी दो यार ! तंग क्यों करते हो ?"

"अय्यर, अय्यर उठो भी। अब सोने का समय नहीं रह गया। उठो बस जल्दी करो !"

उंह, तुम बहुत ही धूर्त हो हरेन्द्र ! हट जाओ यहां से, तंग नहीं करो मुझे--नहीं दो-चार चांटे जड़ दूंगा तो रोते फिरोगे, हां !"

और यह कह कर उसने करवट बदल कर पुनः सोने की चेष्टा की। हरेन्द्र ने कमर पकड़ कर फिर जोर-जोर से हिलाना शुरू कर दिया, किंतु इस बार निद्रा देवी के उपासक अय्यर का पारा आसमान पर चढ़ चुका था। उसने उठ कर दो-तीन चाँटे हरेन्द्र के श्यामल गालों पर जड़ ही तो दिये और लगा गालियों की बौछार बरसाने.—"तुम गधे हो उजबक हो पूरे ! खुद आराम करना नहीं सीखे हो, इसी लिये दूसरों को देख कर डाह करते हो। डियुटी का टाइम नहीं होने से भी तुमने मुझे क्यों जगाया ? क्यों जगाया ? बोलो, बोलो जल्दी, नहीं तो········ ।"

और यह कहते न कहते ही उसने उचक कर हरेन्द्र का गला धर दबाया। यदि हरेन्द्र चाहता तो एक ही झटके में अय्यर को पृथ्वी सुंघा सकता था, किंतु उमर में बड़ा होने के कारण वह प्राय: हर समय अय्यर का सम्मान किया करता और इसीलिये उसके बिगड़ने की ओर ध्यान न देकर वह हर समय मुस्कराता ही रहता था। इस बार भी उसने उसकी अन्यायपूर्ण उछृंखलता का कोई विरोध नहीं किया, बल्कि उसी प्रकार अपने स्वभाव के अनुसार वह पूर्ववत् मुस्कराता ही रहा। परन्तु अय्यर ने उसकी नम्रता का अनुचित लाभ उठाना चाहा। नींद टूट जाने से एक तो वह यूं ही बिगड़ रहा था, तिसपर हरेन्द्र की मुस्कराहट से वह और भी चिढ़ गया। पुन: चांटा मारने के लिये उसने अपना हाथ उठाया ही था कि इतने में मैं वहां पहुंच गया और हाथ पकड़ कर उसे अलग करते हुए बोला,—"अय्यर, तुम्हारा यह कार्य उचित नहीं है !"

"क्या बकते हो जी ?" उसने मुख से फेन के साथ शब्दों की बौछार उगलते हुए कहा,—"जनता हूं, तुम लोगों की बदमाशी। तुम सब मिल कर एक हो गये हो और इसी लिये मुझे अकेला समझ कर तंग करना चाहते हो। क्यों, है न यही बात— ठहरो, अभी..........."

"जल्दबाजी में काम खराब हो जाता है, मि० अय्यर !" मैंने उसे समझाते हुए कहा, "तुम्हारा दिमाग इस समय ठीक नहीं है।

मन की चंचलता को दूर करके चित्त स्थिर करो और तब शान्ति से सोच कर बताओ कि हरेन्द्र ने तुम्हें जगा कर कौन भारी अपराध किया ?"

"हूं, जिरह करने में तुम भी पूरे उस्ताद हो, मिस्टर वर्मा !" उसने तीक्ष्ण दृष्टि से मेरी ओर देख कर कहा,—"यदि आप की प्यारी से भी प्यारी वस्तु को आपसे छीन लिया जाये तो क्या आप नाराज नहीं होंगे ? कच्ची नींद से किसी को जबर्दस्ती उठा देना क्या यही आप लोगों का न्याय है ? देखिये, आप लोग मुझे गुस्सा दिलाने की जरा भी कोशिस न करें, नहीं तो मैं इसकी शिकायत अभी जाकर कमाण्डेन्ट से कर दूंगा, समझे !"

अय्यर की बात पर हरेन्द्र जोर से खिलखिला कर हंस पड़ा। मैं भी उसकी मूर्खता पर मुस्कराये बिना न रह सका। वे हजरत अभी तक अपने आपको माणिकपुर के कैम्प में ही समझ रहे थे। मैं उसका भ्रम दूर करने के अभिप्राय से बोलने ही वाला था कि बीच में हरेन्द्र घाव पर नमक छिड़कते हुए मुझसे पहले ही बोल पड़ा,-"श्रीमान जी, शिकायत अभी कर दीजिये जाकर—नहीं तो बासी होने पर सुनना तो दूर रहा, शायद सूंघना भी वे पसन्द न करें। जाइये, जल्दी पहुंचिये न ! कमाण्डेन्ट साहब अभी-अभी आये हैं अपनी मोटर साईकिल पर !"

अय्यर ने बुरी तरह से घूरकर हरेन्द्र की ओर देखा मानों उसे खा ही जायगा; और वास्तव में उसके हाथ की नसों का

फड़फड़ाना इस बातको साबित कर रहा था कि यदि उस समय मैं वहां उपस्थित न होता, तो एक बार पुनः अपने हाथ की फड़फड़ाहट को उसके गालों पर ढीला करता।

बात बढ़ने न पाये इस ख्याल से मैंने उसे समझाते हुए कहा,—"देखिये, मिस्टर अय्यर ! न तो हम लोग आपस में एक दूसरे के विपक्षी ही हैं और न प्रतिद्वन्दी ही। एक कम्पनी, एक सरकार और एक ही जहाज पर काम करने के कारण हम सब एक हैं—इसके अतिरिक्त हम सब एक ही देश में जन्म लेने के नाते से भी एक ही हैं, फिर क्यों तुम्हें इस बात का भ्रम होगया है कि हमारे में से कोई भी तुम्हारे विरुद्ध कोई कार्यवाही कर सकता है ? हरेन्द्र ने तुम्हें नींद से जगा दिया तो इसका मतलब यह नहीं कि तुम उसे मारना-पीटना आरंभ कर दो। देश, काल और स्थिति को देख कर ही कोई भी कार्य करना उचित होता है। यदि इस समय तुम अपने कैम्प में पड़े हुए सोते होते तो शायद हरेन्द्र को तुम्हें जगा कर स्वयं मार खाने की इच्छा कभी न होती—किंतु यहां तुम देख रहे हो कि हम लोग अपने कैम्प से साढ़े चार सौ मील के लगभग दूर उत्तर में आकर पड़े हुए हैं। चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ और भयानक जंगलों से घिरे हुये होने पर भी क्या हम तुम्हें न जगाते ?"

"यह आप कह क्या रहे हैं, मिस्टर वर्मा ?" विस्मय-विस्फारित नेत्रों से मेरी ओर देखते हुये अय्यर ने कहा,—"क्या सचमुच

हम लोग इस समय अपने कैम्प में नहीं हैं ? साढ़े चार सौ मील के फासले पर ! क्या आप मजाक तो नहीं कर रहे हैं मेरे साथ ?"

"जी, बड़े सुन्दर हैं न आप, जो हर समय हर व्यक्ति आपके साथ मजाक ही करता रहेगा !" हरेन्द्र ने झुंझलाकर कुछ रोषपूर्ण शब्दों में उससे कहा, —"जान पड़ता है एयर-गन चलाते-चलाते उसके जहरीले धुवें से आपकी स्मरणशक्ति बिल्कुल जाती रही है। कल रात की बात भी आप याद नहीं रख सकते—कैसे आश्चर्य की बात है ? आंधी-तूफान इत्यादि क्या सब बातें आप इतनी जल्दी भूल गये हैं ?"

"आंधी-तूफान, कल की रात..............." अस्फुट ध्वनि से अय्यर ने बार-बार यह शब्द दोहराकर भूली हुई याद को पुनः ताजा करने की चेष्टा की। सहसा उसके हाथ और होठों में एक प्रकार की कम्पन सी होने लगी। जान पड़ता था कि मानों गत-रात्रि की उसे एक-एक बात याद होती जारही हो। हुआ भी ऐसा ही—दूसरे क्षण भयभीत होकर वह चिल्ला उठा,—"ओह ! तो इस समय हम लोग हैं कहां पर ?"

"अभी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जासकता," हरेन्द्र ने उत्तर देते हुये कहा,—"रहमान इस बात का पता लगाने के लिये गया हुआ है। हम लोग बड़ी बुरी जगह आकर फंस गये हैं; निकलने का कोई भी मार्ग दिखाई नहीं देता। चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों की सुदृढ़ दीवारें हैं—केवल उस ओर एक तंग

घाटी-सी नजर आती हैं; सो भी लता-निकुञ्जों तथा विशालकाय वृक्षों से भरा हुआ कैसा भयानक जंगल फैला हुआ दिखाई देता है। उधर जाने का कौन व्यक्ति साहस कर सकता है। हिंसक जंतुओं से वह स्थान भरा हुआ होगा।"

"ओह भगवान, तो क्या अब हम लोगों को यहीं भूखे और प्यासे अपने जीवन से हाथ धोने पड़ेंगे ?" हताश भाव से अय्यर ने मेरी ओर देखते हुए कहा,—"कितना भयानक स्थान है; पहले कभी ऐसी जगह नहीं फंसे थे। आपने नक्शे पर भी गौर करके देखा या नहीं ?"

"तुम्हारे कहने से पहले ही मैं सब आवश्यक कार्य कर चुका हूं।" उत्तर देते हुए मैंने कहा,—"यह स्थान नागा-पर्वत के नाम से प्रसिद्ध है।"

"नागा-पर्वत ?" अय्यर ने आश्चर्य प्रकट करते हुये कहा,—"तब यह नागा जाति का निवास-स्थान कहना चाहिये। वे लोग अधिकांश जंगली होते हैं। भील-जाति के साथ उनकी तुलना की जा सकती है, किंतु इनके सामाजिक नियमों एवं रीति-रिवाजों में उनसे काफी भिन्नता है। धनुष-बाण और बर्छे-भालों का प्रयोग ये लोग भी करते हैं और वे लोग भी।"

"आप तो इस विषय में पूरे पारंगत जान पड़ते हैं, अय्यर दादा !" हरेन्द्र ने मुस्कराते हुए उसकी प्रशंसा की।

"पारंगत की बात नहीं, यह विषय अध्ययन से सम्बन्ध रखता

है," अय्यर ने अपनी प्रशंसा सुन कर डींग हांकते हुए कहा, "घर पर मैंने इस विषय में अनेक पुस्तकें पढ़ी थीं। नागा जाति, भील जाति, हब्शी जाति, गुरिल्ला जाति, इत्यादि अनेक जातियों का भी एक इतिहास है; जिसे पढ़ने या सुनने मात्र से ही शरीर में रोमांच पैदा होने लगता है। ऐसी ऐसी विचित्र जातियाँ दुनियां में भरी पड़ी हैं; जिनका इतिहास जानने मात्र से ही दिल में गुदगुदी सी पैदा होने लगती है। यह विषय बहुतों के लिये अत्यन्त मनोरंजक एवं सुखदायक कहा जासकता है, तथा साथ ही बहुतों के लिये हृदय-विदारक एवं दुःखदायी भी बन जाता है......।" कहते-कहते हठात वह चुप हो गया और कोई भूली हुई बात याद करने लगा।

हरेन्द्र ने उत्सुकतावश पूछा,—"इस विषय को जानने अथवा सुनने वालों को विभन्न जातियों के इतिहास का थोड़ा बहुत ज्ञान तो हो ही जाता है, किंतु सुख-दुःख होने की बात मेरी समझ में नहीं आई। जान पड़ता है आप व्यक्तिगत अनुभव प्राप्त कर चुके हैं।"

"हां, इस विषय में मुझे कुछ व्यक्तिगत अनुभव हो चुके हैं।" अय्यर ने सगर्व छाती फुलाकर हरेन्द्र से कहा और अपना अनुभव सुनाने के लिये उसने पुनः कुछ कहने के लिये अपना मुख खोला ही था कि सहसा बीच में बाधा देकर मैंने उसे चुप करा दिया।

"ठहरो, मिस्टर अय्यर ! जातियों के विषय में फिर कभी अपने अनुभव सुना देना." मैंने उसे रोकते हुए कहा,—"यह समय व्यर्थ की बातों में उलझे रहने का समय नहीं है। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि हमारा एक साथी बहुत देर से हम लोगों का साथ छोड़ कर यहां की स्थिति का पता लगाने के लिये गया हुआ है, किंतु इतना समय बीत जाने पर भी रहमान अभी तक वापस नहीं आया। इस समय और बातों को छोड़ कर हमें उसी की चिन्ता अधिक होनी चाहिये।"

"ओ बाबा, अब उसकी चिन्ता भी हमीं लोगों को करनी पड़ेगी ?" अय्यर ने इस बुरी तरह से अपना मुख बिगाड़ कर कहा मानों कोई बहुत भारी बोझा उसके सिर पर लाकर डाल दिया हो। दोनों हाथ की हथेलियों पर अपनी ठोडी टेक कर वह दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ बोला,—"अपनी ही चिन्ता क्या कुछ कम थी, जो अब उसकी चिन्ता करके अपने चित्त को पसीने में घुलने दें। हे भगवान, कैसे उद्धार करोगे इस विपद से हमारी ?"

"यदि इसके लिये भगवान को आपके साथ परामर्श करने की आवश्यकता हुई, तो वे अवश्य ही आपको आमन्त्रित करने में कभी भूल न करेंगे," हरेन्द्र ने उपहास का मधुर छींटा कसते हुये सहसा गंभीर होकर कहा,—"किंतु महाशय, वह विषय तो बाद का है। अभी तो हम लोगों को स्वयं ही कटिबद्ध होकर इसके लिये कुछ न कुछ प्रयास करना होगा। आइये, बस अब अधिक विलम्ब करने का समय नहीं !"

और यह कर उसने बरबस ही अय्यर का कंधा पकड़ कर ऊपर उठा लिया। यद्यपि अय्यर ने विरोध किया भी, किन्तु नवयुवक हरेन्द्र की अतुलनीय शक्ति के आगे उसका कोई वश न चल सका और बाध्य होकर पैंतीस बरस के उस अधेड़ पुरुष को झुंजला कर अपने पैरों पर खड़ा होना ही पड़ा। सम्भव था कि इसके बदले में वह अपने हाथों की स्फूर्ति हरेन्द्र के गालों को गरम करने में खर्च कर बैठता; किंतु यथा समय उन दोनों के बीच में मैंने स्वयं पहुंच कर मामला शांत कर दिया। तो भी वह उस समय इस बुरी तरह से घूर कर उसे देख रहा था कि यदि शीघ्र ही उन दोनों को एक-दूसरे से पृथक न कर दिया गया तो कोई आश्चर्य नहीं कि अय्यर का पारा पुनः आकाश की सैर न करने लगे।

इसी ख्याल से मैंने अय्यर की प्रशंसा में दो-एक शब्द कह कर उसे समझाते हुए बताया,—"यह स्थान हम लोगों के लिये सर्वथा अपरिचित है। हमारे मना करने पर भी रहमान यहां से चला गया; मालूम नहीं वह इस समय कहां और किस अवस्था में हो; किंतु विलम्ब होने के कारण हमें उसकी खोज अवश्य करनी चाहिये। हम लोग सभी तो अल्पवयस्क के नवयुवक हैं। केवल आप ही हमारी पार्टी में ऐसे हैं जिनकी बुद्धि पर भरोसा करके हम कोई भी कार्य कर सकते है। आपका अनुभव वास्तव में हम सभी लोगों से बढ़ा हुआ है। वैसे भी आप को इस प्रांत

में आये हुये काफी अर्सा हो चुका है। इस लिये इस सम्बन्ध में अब आपको ही हमें उचित परामर्श देना चाहिये।"

मेरी युक्ति काम कर गई। अय्यर का दिमाग तुरन्त ही ठन्डा पड़ गया और वह बड़ी गंभीरता से मेरे पास आकर बोला,"—भई, वही तो मैं कहता हूं। इस समय जो भी कार्य किया जावे, बहुत सोच-समझ कर किया जावे। हम सभी जानते हैं यह नागा-पर्वत है। नागा-जाति का निवास स्थान होने के कारण वे लोग कभी भी आकर हम पर आक्रमण कर सकते हैं। उन लोगों का आक्रमण किसी भी अवस्था में सामान्य नहीं कहा जा सकता। बड़े-बड़े धनुष और लम्बे-नोकीले बाणों का प्रयोग वे लोग जिस समय करते हैं तब कोई भी शक्ति मत्यु के मुख से नहीं बचा सकती। वे लोग जंगली होते हैं—पूरे जंगली! चारों ओर से आकर जब वे लोग घेर लेते हैं, तब बाण ही बाण.........."

"ओह भगवान, आप तो उनके धनुष-बाणों की प्रशंसा के ही पुल बांधने लग पड़े।" हरेन्द्र ने बीच में टोकर कहा।

"चुप रहो बच्चे! तुम अभी जानते क्या हो?" उसे झिड़क कर अय्यर ने पुनः कहना आरम्भ किया,—"मैं अच्छी तरह से जानता हूं उन लोगों को,—बरसों इसी प्रान्त में रह कर अनुभव प्राप्त कर चुका हूं, समझे!" और तब मेरी ओर घूम कर वह बोला,—"देखो जी, इस विपद से छुटकारा पाने का केवल एक ही उपाय है—वह यह कि जहाज उड़ा कर भाग चलो, यहां से!"

मुझे उसकी जड़-बुद्धि पर सहसा हंसी आये बिना न रह सकी। समझा कर उसे कहना ही पड़ा,—'भई, जहाज तो हमारा कल रात से ही बेकार पड़ा है। एंजिन ठीक होने पर भी इसका एक पंख टूट गया है। शायद तुम भूले नहीं होगे कि कल रात हेड-लाइट का बल्ब फ्यूज हो जाने के बाद घोर अंधकार में हमें दिखाई नहीं दिया और इस सामने वाले ऊंचे पहाड़ से टकरा कर हम लोग यहां गिर पड़े। सारी रात हम लोग जहाज के भीतर ही एक-दूसरे के ऊपर अचेतावस्था में पड़े रहे। आज सुबह काफी दिन चढ़ने के बाद जब हमारी आंख खुली तो वास्तविक दुर्घटना का ज्ञान हुआ किन्तु सौभाग्य से संघातिक चोट हमारे में से एक को भी नहीं लगी थी। जहाज भी वैसे सब ठीक है—केवल एक पंख इसका टूट गया है जो कि चेष्टा करने पर यहां भी बनाया जा सकता है। पर इसके लिये रहमान का होना बहुत जरूरी—कारण उसके बिना मैं ....!"

अभी मेरी बात पूरी भी न होने पाई थी कि हठात् अय्यर के मुख से भीषण चीत्कार का स्वर सुनाई दिया और दूसरी क्षण वह भूमि पर लोटने लगा।

५

अदृष्ट का चक्कर

"हां, भाई, इसी को कहते हैं अदृष्ट का चक्कर !"

"जी, हां, इसी को कहते हैं अदृष्ट का चक्कर !" अय्यर के मुख से निकला हुआ वाक्य अनायास ही हरेन्द्र ने दोहरा दिया।

"पर मेरी तो अभी तक भी समझ में नहीं आया कि आखिर कहते किसे हैं अदृष्ट का चक्कर?" मैं भी झोंक में पूछ बैठा।

"हूं, कैसे समझ सकोगे भला तुम, मिस्टर वर्मा !" उसने कुछ विरक्त भाव से उत्तर देते हुए कहा,—"तुम्हारे अभी माता-पिता शायद दोनों ही जीवित हैं। कालेज में पढ़ते-पढ़ते बी०ए० पास करते ही तुम इधर चले आये। विवाह भी नहीं कराया जो घर पर स्त्री ही तुम्हारे लिये रोती हो—वैसे भी धनाढ्य पिता की एकलोती संतान होने के कारण तुम्हारे लिये हर तरह से सुख ही सुख है। किन्तु..........." क्षणभर रुक कर एक दीर्घ निःश्वास खींचने के बाद उसने पुनः कहना आरम्भ किया,—"किन्तु मेरी दशा इसके बिल्कुल विपरीत है, घर पर न पिता हैं और न प्रचुर

मात्रा में धन ही छोड़ कर आया हूं। है भी तो अभागे-अनाथों की संख्या ही अधिक। विधवा बूढ़ी मां, स्त्री और दो छोटे-छोटे बच्चे, जिन्हें पीछे ढाढ़स बंधाने वाला भी कोई नहीं। आये थे कुछ कमा कर अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने के लिये; किंतु यहां आ फंसे इस भयानक नागा-पर्वत के मृत्यु-तुल्य घने जंगलों में, जहां से निकलने की आशा करनी तो दूर रही—उलटा लेने के देने पड़ रहे हैं। ओफ, कैसा अचूक निशाना लगाया है उस अदृश्य शत्रु ने······आह! भीषण वेदना से सारा शरीर झन्ना उठा है। यह अदृष्ट का चक्कर नहीं तो और क्या है? ···· भाई, जरा इस तीर को निकाल तो दो मेरे पांव से?··· ····· ओह! ओह! बहुत दर्द हो रहा है!"

कहता हुआ अय्यर पुनः अपना पांव पकड़ कर नीचे लुढ़क पड़ा। वास्तव में वेदना के मारे उसका बुरा हाल था। अज्ञात दिशा से आया हुआ तीर उसके बायें पैर के लम्बे जूते का तला फोड़ कर मांस में भी काफी घुस गया था और इसी लिये वह तिलमिला उठा था। यह सत्य था कि यदि वह उस समय मिलिटरी का लम्बा जूता न पहने होता तो वह तीर उसके पांव को फोड़ कर आरपार घुस जाता और ऐसी दशा में फिर उसे अपने एक पांव का मोह ही त्यागना पड़ जाता; किन्तु सौभाग्य से लम्बे जूते ने उस समय उसकी बड़ी रक्षा की। फिर भी जिस समय वह तीर उसके पांव से निकाला गया, रक्त की एक मोटी धारा निकल कर भूमि को तर करने लगी। हरेन्द्र ने बड़ी शीघ्रता से तत्कालिक-

चिकित्सा का बक्स निकाल कर उसकी मरहम-पट्टी कर दी।

पांव की यथोचित चिकित्सा होने के कारण अय्यर को बहुत कुछ शान्ति मिली और वह एक पेड़ का सहारा लेकर तुरन्त ही सो गया। वास्तव में उसे उस समय आराम करने की सख्त जरूरत थी इस लिये हम दोनों ने भी बाधा देना उचित न समझा।

अय्यर की ओर से निश्चिन्त होने के पश्चात् हमारा ध्यान उस तीर और उसके मारने वाले की ओर गया। हरेन्द्र से कुछ कहने के लिये मैं उसकी ओर घूमा ही था कि सहसा उसने मुझे बोलने के लिये मना करते हुये एक दूसरी घाटी की ओर संकेत किया। हम लोग जिस स्थान पर खड़े थे वह एक समतल भूमि का छोटा सा भाग था; किंतु वृक्षों और जंगली झाड़ियों से वह स्थान बड़ा दुर्गम हो उठा था। उस स्थान के तीन तरफ ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों की चोटियें थीं; तथा एक ओर पश्चिम दिशा में वे तीनों पहाड़ियें जाकर आपस में मिल गई थीं और इसी लिये उस ओर एक तङ्ग लम्बी-सी घाटी बन गई थी। उस सङ्कीर्ण घाटी में इस समय पूर्व की ओर से आती हुई सूर्य की किरणें सीधी पड़ रही थीं। पहाड़ की चोटी पर एक बड़ी सी चट्टान प्राकृतिक रूप से इस प्रकार जमी हुई थी, मानो किसी बड़े हाथी का सिर काट कर वहां रख दिया गया हो। उसी गज-कपाल शिखर के पीछे इस समय दो-तीन भीमकाय काली छायाएं जल्दी-जल्दी इधर-उधर चलती-फिरती दिखाई दे रही थीं।

हरेन्द्र ने मेरा ध्यान उसी ओर आकृष्ट किया था। अनेक क्षण बीत जाने पर जब हम दोनों ने परस्पर एक-दूसरे की ओर देखा तो मुझे जान पड़ा जैसे हरेन्द्र के ऊपर तुषारपात होगया हो। उसके श्यामल मुख-मण्डल पर पीलापन छा गया था। हाथ-पांव और होठों में कम्पन-सी होने लगी थी। मेरी ओर दृष्टि घुमा कर वह अपलक देखता ही रह गया। बोलने की चेष्टा करने पर भी वह एक शब्द अपने मुख से न निकाल सका।

मैंने ढाढ़स देते हुये उसके पास जाकर कहा,—"घबराते क्यों हो, हरेन्द्र ! वे लोग तो अभी हमसे काफी दूर हैं—बीच में देख रहे हो कितनी बड़ी घाटी है, इसे कूद कर तो वे लोग यहाँ आने से रहे—और घूम कर आने में कम से कम दो-ढ़ाई घन्टे तो लग ही जायंगे ?"

"आपका यह ख्याल गलत भी हो सकता है, श्रीमान जी !" सूखे हुए होठों पर जीभ फेर कर वह बड़ी कठिनता से बोला और पुनः उस गज-कपाल रूपी चट्टान की ओर दृष्टि स्थिर करके कहने लगा,—"वह देखिये, धनुष-बाण और लम्बे भालों से सभी लोग सुसज्जित हैं। उन्हीं लोगों में से किसी ने अय्यर के पांव का लक्ष्य करके उसे आघात पहुंचाने की चेष्टा की है और अभी भी वे इसी ओर बढ़ने का विचार कर रहे हैं !"

"क्या कहा ? इसी ओर को बढ़ रहे हैं ?" कहता हुआ अय्यर हठात् अपने स्थान पर उठ कर बैठ गया।

यद्यपि हरेन्द्र बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहा था, किंतु फिर भी उसके कानों में थोड़ी-बहुत भनक पहुंच ही गई। नागा जाति के इतिहास से वह भली भांति परिचित था; इसी लिये वह उनसे अधिक भय खाता था। भय खाने की स्पष्ट रूप से तो कोई बात थी नहीं, किंतु फिर भी न जाने क्यों ऐसा जान पड़ता था जैसे उनका आतंक उसके हृदय पर बहुत पहले ही से छाया हुआ हो। इसका कारण हम लोगों के लिये अभी अज्ञात ही था।

पेड़ के सहारे अपने स्थान पर उठ कर बैठते हुए उसने हम दोनों की ओर बारी-बारी देखते हुए कहा,—"भई, चुप क्यों हो गये तुम लोग, बोलो न क्या बात है? कौन कहता था इस ओर को बढ़े चले आरहे हैं वे लोग? अरे भाई, खड़े-खड़े क्या देख रहे हो मेरे मुह की तरफ? याद रक्खो, जल्दी ही कोई उपाय उनसे अपनी रक्षा का न किया गया तो हम में से एक भी जीवित बच कर यहां से न जा सकेगा!"

"घबराओ नहीं, मिस्टर अय्यर! तुम शान्ति से लेटे रहो अपने स्थान पर—हम अपनी रक्षा का प्रबन्ध स्वयं ही कर लेंगे!"

'कैसे कर लोगे? जरा सुनूं भी तो!" मेरी बात पर उसने असन्तुष्ट होकर प्रश्न किया।

मैं बोला, —"भई, अव्वल तो उन्हें इस स्थान पर घूम कर आने में पूरे दो-ढ़ाई घंटे लग जायंगे; और यदि वे लोग यहां तक ठीक से पहुंच भी गये तो उन्हें पराजित करने में तनिक भी देर

नहीं लगेगी। तीन-चार ही तो हैं, बन्दूकों की गोलियों से तुरन्त ही ....।"

"हरे हरे हरे, ऐसा गजब भूल कर भी न कर बैठना !" अय्यर ने बाधा देकर मुझे रोकते हुए कहा.—"अभी तो कुछ आशा भी है; फिर तो बिल्कुल ही जीवन से हाथ धोना पड़ जायगा। यह नागा लोग हैं, भाई जी ! इनके साथ बैर करके फिर कोई भी जीता नहीं बचता।"

'आप तो इन लोगों से बहुत ही बुरी तरह से घबरा गये हैं, मिस्टर अय्यर !" मैंने व्यंग्य करते हुये उससे कहा,—"केवल एक बाण के आघात से ही आप इतना विचलित हो उठे हैं। अभी तो उन लोगों से मुकाबला भी आकर नहीं पड़ा है। यदि ऐसा हो गया तो क्या करोगे ?"

"मेरी बातों को आप हंसी में उड़ाने की चेष्टा भूलकर भी न करें"—अय्यर ने गंभीर मुद्रा से कहना शुरू किया,—'यह माना कि वे लोग अभी दूर से आपको तीन-चार ही नजर आरहे हैं; और यह भी सत्य है कि उनके यहाँ पहुंचते ही आन की आन में आप उन्हें अपनी बन्दूकों की गोलियों से उड़ा देंगे, पर आपने इसका परिणाम भी सोचने का कष्ट किया है ? शायद नहीं। देखिये, मैं डरपोक नहीं हूँ। बाण के आघात से उन्होंने मेरा एक पाँव जख्मी कर दिया है इसी लिये मेरे हृदय पर उन लोगों का आतंक छा गया है—यह सोचना आपका नितान्त भ्रमपूर्ण

सकेगा, विपरीत करने से क्षति का मैं जिम्मेदार नहीं। बोलो, क्या कहते हो ? मेरी बात मंजूर है या नहीं ?"

"अरे बाबा, जो उचित समझो करो," मैंने झुंझला कर उससे कहा,—"बेचारा रहमान तो न जाने कब और कहां इन पिशाचों के कठोर चंगुल में फंस कर अपने जीवन से हाथ धो बैठा होगा। अब हमारी बारी है—सो हम दोनों को भी तुम काठ के पुतले के समान अपने इशारों पर नचाने का आयोजन कर रहे हो। अदृष्ट का चक्कर! उसी के साथ-साथ हमारे जीवन का चक्कर भी चक्करा रहा है। देखें; क्या होता है परिणाम !"

"घबराओ नहीं, मिस्टर वर्मा !" अय्यर ने मुझे सान्तवना देते हुए कहा,—"यह सत्य है कि अदृष्ट का चक्कर बहुत बलवान एवं शक्तिशाली होता है; किंतु धैर्य्यवान एवं पराक्रमी पुरुषों के लिये कोई भी कार्य दुनिया में असाध्य नहीं होता। आओ हम लोग......ओह......ओ ......"

सहसा एक बारगी ही तीन-चार तीर सनसनाते हुये आकर उसके पास ही हवाई जहाज की झिलमिलाती हुई एलोम्यूनियम की चादर के साथ टकराये और दूसरी क्षण वे तीनों विशालकाय नागा लोगों के बीच में घिरे हुये थे। काले चेहरों पर रक्तपूर्ण बड़ी-बड़ी आंखों से उस समय आग की चिन्गारिएं-सी निकलती हुई दिखाई दे रही थीं। मिस्टर अय्यर और हरेन्द्र के साथ मैं भी इस समय पूर्णरूप से उनके आधीन था।

————

६

बलि-वेदी के निकट

'गज-कपाल' जो वास्तव में दूर से देखने पर एक बड़े हाथी के कटे हुये सिर के समान ही दिखाई देता था, पास जाने पर ज्ञात हुआ कि वह एक बहुत बड़ी गुहा का सिंहद्वार था। नागा लोग हम तीनों को पकड़ कर इसी स्थान पर ले आये थे। यद्यपि उनके पास उस समय धनुष-बाणों के अतिरिक्त लम्बे-लम्बे बरछे, भाले और कमर से लगी हुई तेज़ छुरियें भी थीं; किंतु इनमें से किसी एक का भी उन्होंने उस समय हमारे ऊपर प्रयोग नहीं किया। करते भी क्यों, जब कि हमने उनके किसी कार्य में बाधा ही नहीं पहुंचाई—जैसा-जैसा वे संकेत से कहते रहे, वैसे ही वैसे हम भी उसका पालन करते रहे। शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने की आवश्यकता तो उस समय होती जब कि हम उनका विरोध करते।

जहाज के पास पहुंचने से पहले उन लोगों ने तीन-चार तीर अवश्य छोड़े थे हमारी तरफ—सो भी किसी को आघात पहुंचाने के ख्याल से नहीं, बल्कि हम लोगों को सावधान करने के ख्याल से। क्यों कि यदि हम लोगों को क्षति पहुंचाने का ही उनका विचार होता तो इतना पास पहुंचने के बाद कभी भी उनका लक्ष्य व्यर्थ नहीं जा सकता था। पर्वतों की कन्दराओं में रहने वाली नागा जाति जन्म से ही धर्म-युद्ध करना सीखती है, कपट-युद्ध करना वे लोग जानते ही नहीं। इसीलिये हमारे पास पहुंचने के पूर्व उन्होंने बाणों द्वारा पहले हमें अपने आगमन की सूचना देदी और बाद में स्वयं प्रकट हो गये। ऐसा करने का उद्देश्य एक यह भी हो सकता था कि यदि उन बाणों को देख कर हम लोग भी युद्ध करने का विचार करें तो वे लोग पहले ही से सतर्क होकर डट जावें।

परन्तु अय्यर के कथनानुसार हम लोगों ने उनका कोई विरोध नहीं किया। न तो एयर-गन का ही प्रयोग किया और न बंदूकों का ही। हमारे पास उस समय दो पिस्तौलें भी थीं; किंतु अय्यर के परामर्श से हमने उनको छुवा तक भी नहीं, और जिस समय नागा लोगों ने आकर हमें चारों ओर से घेर लिया—हम चुपचाप उनके साथ-साथ चल दिये। वे दोनों पिस्तोलें इस समय भी हरेन्द्र और मेरे कोट की जेबों में भरी हुई पड़ी थीं। चाहते तो एक ही पिस्तौल से उन सबका काम तमाम कर सकते थे। पर ऐसा करके हमने नागा-जाति की सोई हुई क्रोधाग्नि को भड़काना किसी

प्रकार भी उचित नहीं समझा। हां, यदि वे लोग हमें कोई क्षति पहुंचाते तो फिर हम भी न चूकते।

वहां से चलते समय एक बार उन्होंने हमारे जहाज की ओर दृष्टिपात किया भी था; पर तौभी उन्होंने उसे कोई क्षति नहीं पहुंचाई। एक-दो नागा उसके पास जाकर चारों ओर चक्कर लगाने के बाद पुनः वापस लौट आये। सम्भवतः इतना विशाल पक्षी उन्होंने अपने बन-प्रदेश में कभी नहीं देखा होगा। समझने की चेष्टा करने पर भी वे लोग उस गरुड़ पक्षी के बन्धु का रहस्य न जान सके होंगे। हम लोग चुपचाप खड़े-खड़े उनकी प्रत्येक बात और प्रत्येक भाव को देख रहे थे। पहले तो वे लोग हमारे हवाई-जहाज को देख कर अत्यधिक उत्तेजित हो उठे थे; किंतु जब उसके चारों ओर घूम कर भली भांति उसका उन्होंने निरीक्षण करके अपना संतोष कर लिया, तो शांत होकर सब एक-दूसरे से फुसफुसा कर बातें करने लगे।

जहाज को उन लोगों ने छुवा तक भी नहीं। जैसे आये थे वैसे ही चुपचाप हम तीनों को साथ लेकर चल दिये। अय्यर और हरेन्द्र को जहाज की उतनी चिंता नहीं थी जितनी कि एयर-गन और कैमरा की। अय्यर के लिये उसकी एयर-गन उतनी ही प्यारी थी जितना कि हरेन्द्र को उसका कैमरा! किंतु जहाज की चिंता तो मुझे होनी चाहिये थी—कारण, मैं ही उसका इंचार्ज था। जहाज के साथ घटित किसी भी दुर्घटना का उत्तरदायित्व

पूर्णतः मेरे सिर पर ही था। पर मुझे उसके लिये किसी प्रकार का जोखम उठाने की आवश्यकता ही न पड़ी। हम लोगों को साथ लेकर वे जिस प्रकार आये थे, उसी प्रकार शांत भाव से घाटी में उतर कर गज-कपाल की ओर को बढ़ने लगे।

समतल भूमि पर जहां हमारा जहाज गिरा पड़ा था, उस स्थान से पन्द्रह-बीस गज की दूरी पर ही घाटी आरम्भ हो गई थी। यहां पर लम्बी २ कोमल घास के अतिरिक्त कांटेदार झाड़ियें अथवा ऊंचे-ऊंचे वृक्ष कतई नहीं थे। अलबत्तः घाटी की ढलवान शुरू होते ही घास के स्थान पर बड़ी-बड़ी झाड़ियें और ऊंचे-ऊंचे देवदारु, शाल, शीशम, जामुन और सेम्हल के वृक्ष खड़े हुये दिखाई देने लगे थे। जंगल इतना घना और शांतपूर्ण था कि दिन के समय भी वहां सूर्य की किरणें नहीं पहुंच सकती थीं। घाटी की ढालू एकदम सीधी और खड़ी होने के कारण हम लोगों को उतरने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ रहा था; किंतु इसके विपरीत नागा लोग बिना किसी रुकावट के उतरते चले जारहे थे।

घाटी के नीचे पहुंच कर हम लोगों को एक पगडण्डी मिली जो बहुत चौड़ी न होने पर भी काफी परिष्कृत और स्पष्ट दिखाई देती थी। जान पड़ता था, उस ओर से नागा लोग प्रायः हर समय ही आते-जाते रहते थे। अब हम लोग उसी पगडण्डी के ऊपर दक्षिण की ओर को चल रहे थे। हमारे दोनों ओर दो ऊंचे-ऊंचे

पर्वतों की श्रेणिएं थीं और बगल में था एक सूखा हुआ बरसाती नाला। थोड़ी दूर उसी घाटी में चलते रहने के बाद हम लोगों ने उस सूखे हुये पत्थरीले नाले को पार किया और अब हम सामने वाले दूसरे पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ने लगे थे। इस पहाड़ के ऊपर ही वह गज-कपाल रूपी शिखर था। वह स्थान वहां से बहुत अधिक ऊंचा होने के कारण हम लोगों को स्पष्ट दिखाई दे रहा था।

घाटी से नीचे उतरते समय हम लोगों को जरा भी थकावट का अनुभव नहीं हुआ था; किन्तु अब दूसरे पहाड़ की चढ़ाई पर चढ़ते समय अत्यधिक थकावट महसूस होने लगी थी। विशेषतः मिस्टर अय्यर जो हम दोनों से आयु में अधिक था, बहुत बुरी तरह से थक चुका था। वायुमण्डल शान्त एवं शीतल होने पर भी उसके माथे से पसीने की बूंदें टप-टप करके नीचे गिरने लगी थीं। श्वास-प्रश्वास भी तीव्र गति से होने लगा था। इतना ही नहीं, उसके तो पांव भी अब अधिक चलने से साफ इन्कार कर चुके थे। नागा लोगों के भय से यद्यपि वह चुपचाप हमारे साथ अग्रसर होने के लिये बाध्य हो रहा था, किंतु मैं जानता था उसकी उस समय बहुत बुरी दशा हो चुकी थी, अधिक चलने का उसमें साहस ही नहीं रह गया था।

हुआ भी ऐसा ही। पहाड़ की आधी चढ़ाई भी मुश्किल से अभी समाप्त न हो पाई थी कि हठात् उसके पांव लड़खड़ा उठे—ठीक एक शराबी के समान दो-चार कदम और चलने के बाद

वह धम्म् से पृथ्वी पर गिर पड़ा। यदि हरेन्द्र लपक कर उसे न संभाल लेता तो निश्चय था कि वह लुढ़क कर आधा मील नीचे एक बड़े भारी खड्ड में गिर पड़ता। उसके गिरते ही नागा लोग तुरन्त सावधान होकर उसके पास जा पहुंचे और हाथ के बल्लमों को बड़े जोर से पत्थरीली भूमि में गाड़ कर वे लोग अन्ट-बन्ट न जाने क्या-क्या आपस में बकने लगे। उनकी भाव-भङ्गिमा से स्पष्ट ज्ञात होता था कि अय्यर के गिरने से वे लोग कुछ उत्तेजित से हो उठे थे। साथ ही दूसरे नागा के संकेत से हमें मालूम हुआ कि वे लोग हमारी दुर्बलता पर हंस रहे थे।

एक नागा ने घृणा से अपना मुख बिचका कर अय्यर से कुछ कहा; किन्तु उसका मतलब अय्यर की समझ में कुछ आया या नहीं, यह हम कह नहीं सकते—पर उत्तर में उसने बङ्ग भाषा की आड़ लेकर गिड़गिड़ाते हुए इतना ही कहा,—"एखन आर चलते पारि ना, बाबा!"

एक-दो नागा तो उसकी बात सुन कर चुपचाप देखते ही रह गये उसकी ओर। परन्तु उनमें से दो नागा उच्च स्वर में न जाने क्या-क्या चख-चख सी करने लगे आपस में। ढंग देखने से यही मालूम होता था कि वे लोग अय्यर के ऊपर बहुत बिगड़ रहे थे और झुंझला कर उसे पीटना भी चाहते थे; किंतु अन्य साथियों के बाधा देने पर हाथ उठाकर भी उन्होंने उसे पीटा नहीं। वे दोनों नागा स्वभाव से ही कठोर मालूम होते थे। उनके भयानक काले

चेहरों से क्रूरता टपक रही थी। बात-बात में बिगड़ उठना और आंखें लाल करेके उच्च स्वर में बोलना आरम्भ कर देना—यही सब गुण हम इतने अल्प समय में उन लोगों में देख पाये थे। अय्यर से पार न बसाई तो वे, दोनों झुंझला कर हमारी तरफ आये और कुछ कुछ बकने लगे।

उनके संकेत से यह विदित होता था कि वह लोग चाहते हैं हम अपने गिरे हुये साथी को उठा कर स्वयं अपनी पीठ पर लाद कर ऊपर ले चलें। किंतु सच पूछिये तो हमारी दशा स्वयं ही ऐसी शोचनीय हो रही थी कि अपने शरीर का बोझ भी उठा सकने की शक्ति हमारे पांवों में नहीं रह गई थी। फिर ऐसी दशा में मृतप्राय अय्यर का बोझ उठा सकना तो हमारे लिये नितांत ही असम्भव था। पहले तो हमने उन दोनों धूर्त नागा लोगों के संकेतों की ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया; पर जब वे दोनों जबर्दस्ती हमारा मुख अपनी ओर करके भांति-भांति के संकेतों से अपना उद्देश्य समझाने की चेष्टा करने लगे, तब मजबूर होकर हमें भी संकेत करके अपनी असमर्थता को उनके आगे प्रकट करना पड़ा।

इस पर वे दोनों बहुत बुरी तरह से हमारे ऊपर बिगड़ पड़े और चख-चख के उच्च स्वर से उन्होंने तमाम घाटी को गुंजार दिया। इस समय जितनी भी अच्छी-बुरी गालियें जीवन भर में उन दोनों ने सीखी थीं, उन सबका प्रयोग पूरी शक्ति लगाकर हमारे ऊपर कर चुके थे। बकते-बकते जब दोनों थक गये तो

उस अन्धकार पूर्ण गुहा में टटोल-टटोल कर आगे बढ़ना पड़ रहा था। वे लोग अभ्यस्त होने के कारण अनेक बार हम लोगों से आकर टकरा जाते थे। कोई पचास गज या इससे कुछ अधिक अंधकार में चलने के पश्चात् एक क्षीण प्रकाश की रेखा हमें दिखाई देने लगी। तभी हमने समझ लिया कि गुहा अब समाप्त होने वाली है। हुआ भी ऐसा ही। बीस पचीस गज और आगे बढ़ने पर वास्तव में गुहा समाप्त होगई और अब उसके बजाय एक हरा-भरा लम्बा-सा मैदान दिखाई देने लगा था।

६

सौन्दर्यपूर्ण हरिताङ्गण में

वह हरिताङ्गण लगभग डेढ़ सौ गज चौड़ा और अनेक मील लम्बा था। उसके दोनों ओर दो पर्वत श्रेणिएं दूर तक सम-कोण बनाती हुई चली गई थीं। दोनों ओर के पर्वतों की सुदृढ़ दीवारों के मध्य में वह मैदान ठीक एक दुर्ग के समान प्रतीत होता था। हरे-भरे मैदान के बीच से एक शीतल जल की सरिता कल-कल-निनाद करती हुई उत्तर से दक्षिण की ओर बही चली जा रही थी। सरिता के दोनों तट पर भांति-भांति के फलदार वृक्ष खड़े हुए लहरा रहे थे। वृक्षों की डालियें फलों के बोझ से झुकी हुई सरिता के शीतल-मधुर जल का स्पर्श कर रही थीं। प्रकृति के इस अनुपम दृश्य को देखते ही मन की समस्त शैथिल्यता दूर हो कर अद्भुत साहस का संचार होने लगता था।

यह हरिताङ्गण ही मानों नागा जाति की राजधानी थी। ऐसा सुरक्षित स्थान समस्त नागा पर्वत में और कहीं मिल भी

नहीं सकता था। दोनों और प्रत्येक पहाड़ की जड़ में छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की गुहाएं बनी हुई थीं; उन्हीं में नागा लोगों का समस्त परिवार निवास करता था। अपनी-अपनी इच्छा के अनुकूल उन लोगों ने गुहाओं के मुख पर विविध भांति के फूलों के पौधे लगाकर यथाशक्ति उन्हें सजा रक्खा था। हरे-भरे मैदान के दोनों छोर के पास, जहां से अन्य जाति वालों को इस प्राकृतिक दुर्ग में प्रवेश करने का मार्ग प्राप्त हो सकता था—उन लोगों ने अपनी जाति के छटे हुए वीरों को हर समय वहीं पर रहने का आदेश कर दिया था, ताकि बाह्य-जगत के विचार मालूम होते रहें तथा आक्रमण करने पर उनका मुकाबला भली प्रकार किया जा सके।

हम लोगों ने वहां पहुंच कर देखा, नागा जाति के छोटे-छोटे बच्चों में से कुछ सरिता में कूद-कूद कर कल्लोलें कर रहे थे और कुछ वृक्षों पर चढ़ कर फल खाते और बन्दरों के समान उछल-कूद कर पुनः सरिता में कूद कर बहुत दूर तैरते हुए चले जाते थे। बच्चों की हुड़दंग बाजी और किलकारियों से वह समस्त घाटी गुञ्जायमान हो रही थी। ऐसी-ऐसी शैतानिएं करने पर भी उन्हें कोई मना करने वाला नहीं था। स्वन्तंत्र जाति के बच्चे जो ठहरे! कहीं आते, कहीं जाते, कुछ भी खाते पीते—कोई उन्हें टोकने वाला थोड़ा ही था। बाल्यकाल से ही वे लोग स्वतन्त्र वायुमण्डल में पलते, बड़े होते तथा स्वतन्त्र वातावरण का शुरू से ही उनके जीवन पर प्रभाव पड़ता—इसी लिये जीवन के अन्तिम काल तक वे स्वच्छन्द ही रहना अधिक पसन्द करते।

परन्तु आश्चर्य की बात थी कि इतने बच्चे होने पर भी स्त्रियों का वहां सर्वथा अभाव ही था। यदि थीं भी तो इनी-गिनी कुछ वृद्ध स्त्रियें ही ऐसी थीं जो दुर्बलता के कारण न कहीं आ सकती थीं, न कहीं जा सकती थीं। जान पड़ता था आज उन लोगों का कोई उत्सव था—उसी में नागा जाति की समस्त स्त्रियें अपने परिवार के पुरुषों के साथ एकत्र होकर गई हुई थीं। दस वर्ष से नीचे के बच्चे और साठ वर्ष से ऊपर की वृद्धा स्त्रियें निवास-स्थान पर रह कर अपने-अपने घरों की रक्षा कर रही थीं। यही कारण था कि आज उन शिशुओं के आनन्द की वृद्धि के साथ-साथ स्वछन्दपूर्ण उच्छृङ्खलता भी पराकाष्ठा को पहुंच चुकी थी। सुविस्तृत हरे-भरे मैदान में आज उन्हीं लोगों का अखण्ड राज्य था। कोलाहल के बीच-बीच कभी किसी बच्चे के मुख से निकला हुआ करुण क्रंदन भी सुनाई पड़ जाता था। एक बच्चा ही जब अपनी शैतानियों से समस्त घर को आकाश में उठा लेता है; तो फिर भला वहां तो असंख्य बच्चों का कोलाहल था।

प्रकृति के इस अनुपम सौन्दर्य को देख कर वास्तव में सच पूछो तो मैं इतना आत्म-विस्मृत-सा हो गया था कि क्षण भर को यह भी भूल बैठा कि हम लोग इस समय नागा लोगों की कैद में हैं। हम लोगों को सरिता के तट पर अकेला छोड़ कर वे सब नागा सामने की गुफाओं में चले गये थे। मैंने एक बार चारों ओर दृष्टि घुमा कर देखा। वह स्थान इतना दुर्गम था कि वहां से निकल कर भागना हमारे लिये नितांत असंभव था। इस मैदान

में प्रवेश करने का मार्ग वही गज-कपाल के नीचे वाली संकीर्ण गुहा ही हम लोगों को अभी तक विदित हो सकी थी—सो उसे भी इन लोगों ने आते समय इतनी बड़ी शिला-खण्ड से बन्द कर दिया था कि हमारे जैसे छः सात मनुष्य भी उसे खिसका कर अलग नहीं कर सकते थे। अपरिचित होने के कारण और कोई मार्ग हम लोगों को मालूम ही नहीं था; इसलिये व्यर्थ भाग कर अपने जीवन को संकट में डालने का दुःसहास हम भला कैसे कर सकते थे ? बाध्य होकर हमें वहीं बैठा रहना पड़ा।

थकावट से चूर हो कर अय्यर अभी तक सरिता के शीतल जल में पांव लटकाये चुपचाप बैठा हुआ था। ठंडी हवा के मंद झोंकों से जब चित्त जरा उसका शांत हुआ तो मेरी ओर देख कर हताश भाव से बोला,—"बहुत बुरी तरह से फंसे, मिस्टर वर्मा !"

"जी, यह सब आपही के तो गुल खिलाये हुये हैं,"—मेरे बजाय हरेन्द्र ने खीझ कर उत्तर दिया,—"यदि हम अपनी बंदूकों का आश्रय ग्रहण करते तो क्या हमारी ऐसी दुर्दशा हो सकती थी कभी ? उस समय यह लोग केवल पांच व्यक्ति थे, जब कि अब हम पूर्णरूप से इनके आधीन हैं !"

"भाई, वह सब तो ठीक था किंतु ....' उसने अपनी सफाई देते हुये कहा,—"किंतु मुझे क्या मालूम था कि ये लोग हमारे साथ ऐसा दुर्व्यवहार करने पर उतारू हो जायंगे; और फिर

बंदूक की आवाज सुन कर अन्य सभी नागा लोगों के पहुंचने का भी तो भय था हमारे लिये।"

हरेन्द्र बोला,—"दस-बीस क्या यदि समस्त नागा लोग भी एकत्र हो कर हमारे ऊपर आक्रमण करने को तैयार होते तो भी वे हमारे पास तक पहुंच नहीं सकते थे। बंदूक और रायफिलों की मार ही कोई मामूली नहीं होती; फिर हमारे पास तो एयर-गन भी मौजूद थी। इच्छा करने पर हम क्षणमात्र में ही सब को भून सकते थे। मुझे आश्चर्य होता है आपके मुख से ऐसी बातें सुन कर और दुःख होता है यह जान कर कि आपने एयर-गन चलाना सीखा ही क्यों ? केवल आपकी भीरुता के कारण ही आज हमें इन लोगों के हाथों इतने कष्ट उठाने पड़ रहे हैं— और अभी भी क्या मालूम आगे इसका परिणाम क्या होता है ?"

अय्यर प्रतिवाद में एक शब्द भी अपने मुख से न निकाल सका। और निकालता भी कैसे—जब कि उसी की दुर्बलता के कारण यह सब काण्ड हुआ था। न वह हमें अपने शस्त्रास्त्रों का प्रयोग करने को मना करता और न हमें इस जंगली जाति के आधीन इतने दारुण कष्ट उठाने पड़ते।

उन दोनों के बीच किसी प्रकार का मनोमालिन्य न हो जाये इस भय से मुझे मध्यस्थ हो कर बोलना पड़ा। अय्यर का पक्ष लेते हुये मैंने कहा, "भाई, इनका भी क्या दोष ? हमारे अदृष्ट में ही जब ऐसा होना लिखा था; तब किसी के माथे इसका दोष

मढ़ने से लाभ भी क्या ? यदि सौभाग्य से बच कर यहां से निकल गये तो याद रक्खो, हम लोगों के जीवन में यह सबसे अधिक मनोरंजक, महत्वपूर्ण तथा रोमांच पैदा करने वाली दुर्घटना होगी। इसके अतिरिक्त सभ्य जातियों से कोसों दूर जंगल में रहने वाली नागा जाति के सम्बन्ध में भी हमें बहुत-कुछ अनुभव प्राप्त हो जायंगे। इस दुर्घटना का वर्णन यदि आप अपने परिवार वालों के साथ बैठ कर करने लग जायंगे, तो न केवल परिवार वाले ही, बल्कि मोहल्ले भर के सब लोग अपने दांतों तले अंगुली दबा लेंगे। और यदि पुस्तकाकार में आप इस घटना को आद्योपांत छपा देंगे तो उस भाषा के पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के साथ-साथ मनोरंजन भी उन्हें कोई कम न होगा।"

"वाह, वीरेन्द्र दादा! हवाई उड़ाके के साथ-साथ आप तो साहित्यकार भी पूरे मालूम देते हैं!" इस बार हरेन्द्र ने मेरे ऊपर व्यंग-बाण कसते हुये कहा "तब यह काम यहां से जाने के बाद आप ही संभालियेगा। कारण, एक तो आप ग्रेजुएट हैं वैसे भी – दूसरे साहित्य-कला का भी ज्ञान आपको यथेष्ट है।"

"इस घटना को पुस्तकरूप में छपवाने का विचार तो पक्का है—पर यही क्या मालूम कि हम लोग यहां से बच कर जा भी सकेंगे या नहीं ?" मैंने कहा।

"इसका जिम्मा मैं लेता हूं अपने ऊपर!" हरेन्द्र ने बड़ी गंभीरता से उत्तर देते हुये कहा, – "आपकी आयु पूरे सत्तर वर्ष

की है। यदि विश्वास नहीं, तो फैलाइये अपने दाहिने हाथ की हथेली !" और यह कहते न कहते ही उसने बरबस मेरे दाहिने हाथ को खींच कर अपनी जांघ पर फैला लिया।

"यह देखिये," उसने मेरी हस्त-रेखाओं पर अंगुली फेरते हुये कहना शुरू किया,—"प्रत्येक अंगुली की चौड़ाई रेखा-गणित में बीस-बीस वर्ष की मानी गई है। यह ऊपर वाली कुछ टेढ़ी-सी आयु-रेखा कहलाती है। अब अपनी अंगुलियों को झुकाइये। कनिष्ठाङ्गुल से मध्य तक की दोनों अंगुलिएं आपकी आयु-रेखा को पूरी-पूरी ढंक लेती हैं। इसका मतलब हुआ साठ वर्ष की आयु तो निश्चयरूप से यह है ही—परन्तु आपकी रेखा आगे भी आधा इंच के लगभग गई हुई है। दस वर्ष इसके लगाईये। कुल हिसाब लगाने पर पूरे सत्तर वर्ष की आयु बैठती है। इससे पहले आप मर ही नहीं सकते।"

"वाह, भई—ज्योतिषी जी ! गणित-शास्त्र के तो तुम पूरे पंडित जान पड़ते हो।" मैंने हंस कर अपना हाथ खींच लिया। यद्यपि इन बातों में मुझे विशेष कोई रुचि नहीं थी. किंतु विपद् के समय जब कि जीवन पर संकट छाया हुआ था—उसकी बातों ने मुझे काफी शान्ति प्रदान की।

अय्यर को अपनी ही चिंता थी। घर पर बेचारी विधवा बूढ़ी मां, स्त्री और बच्चे उसके बिना रो-रो कर अपने प्राण दे देंगे। इसीलिये बड़ी शीघ्रता से सरिता में अपना हाथ साफ करके हरेन्द्र

के आगे फैलाते हुये बड़ी नम्रता से कहा,—"देखना भाई; जरा हमारी भी आयु-रेखा ?"

जल्दी में हाथ को पोछना भी भूल गया था। भीगे हुये हाथ से बूंद-बूंद पानी ने टपक कर उसकी जांघ का सारा कपड़ा तर कर दिया था, उसी से चिढ़ कर हरेन्द्र ने बिना उसके हाथ की ओर देखे ही कह दिया,—"तुम क्या दिखाते हो जी ? तुम्हारी आयु तो बिल्कुल खत्म हो चुकी है !"

"एं, क्या बिलकुल खत्म हो चुकी है ?" अय्यर ने सहसा घबरा कर प्रश्न किया,—"सच बताओ भाई क्या मैं अब जीऊंगा ही नहीं ?"

और इसके बाद उसने दीर्घ निःश्वास खींच कर आशा भरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। अय्यर की चंचलता ने हरेन्द्र का साहस और भी बढ़ा दिया। उसने उसी प्रकार अपना मुख उतार कर कहा,—"भाई, तुम जीओगे या नहीं--यह मैं कैसे कहूं; पर आयु तुम्हारी खत्म हो चुकी है !"

"इसका मतलब तो यही हुआ न, कि मैं अब मर जाऊंगा।" मेरी ओर देख कर वह बोला,—"ओह, बड़ी गलती कर बैठा हूं। यदि पहले मालूम हो जाता तो मैं इधर न आकर सीधा अपने घर चला जाता। अन्तिम समय अपने स्त्री-बच्चों और बूढ़ी मां से तो मिल लेता। अब क्या करूं ? आप ही कोई तरकीब बताओ।

उन लोगों से बिना मिले मैं कैसे मर सकूंगा। भाई, जरा गौर से फिर तो देखो !"

"देख लिया भई, खूब अच्छी तरह देख लिया। अब और कितना दिखाते रहोगे ? और देख कर मैं करूंगा भी क्या, अय्यर दादा !" हरेन्द्र अपनी ही झोंक में कहता चला गया। उसे मानों अय्यर को चिढ़ाने और रोता-झींकता हुआ देखने में खास मजा आता था। गंभीर मुख-मुद्रा बनाये वह कहता ही रहा,—"देखते-देखते तो यह दशा होने को आई कि अब प्राणों पर आया हुआ संकट भी टालना कठिन हो रहा है।"

"क्षमा करो भाई मुझे, भूल जाओ मेरी अब उन गलतियों को !" कहते-कहते अय्यर की आंखों में अश्रु बिन्दु छलछला आये और वह हताशभाव से सरिता के स्वच्छ-निर्मल जल की ओर देखने लगा; मानों उसकी शीतलता से अपने हृदय की धधकती हुई ज्वाला को शान्त करने की चेष्टा कर रहा हो। मुझे उसकी शोचनीय अवस्था पर बड़ी दया आई और इसीलिये तुरन्त हरेन्द्र को मैंने संकेत द्वारा समझा दिया।

मेरा अभिप्राय समझ कर उसने बड़े प्रेम से अय्यर का हाथ अपने हाथ में थाम कर देखना आरम्भ कर दिया। अनेक क्षणों तक उलट पलट कर देखने के बाद अन्त में वह बड़े नम्र शब्दों में बोला,—"कौन कहता है आप जल्दी मर जायेंगे ? आपकी आयु तो पूरे अस्सी वर्ष की है।"

"क्या सच कहते हो यार ?" सहसा नव-विकसित कमल के समान खिलकर वह बोला,—"भई, तुमने तो मुझे डरा ही दिया था। रोने की इच्छा तो मैं कर ही रहा था; पर साथ ही यह भी सोचता जाता था कि ऐसे दुःखपूर्ण जीवन से छुटकारा पाने के लिये तो कहीं अधिक अच्छा यह होता कि तुम लोगों की नजर बचा कर इस सरिता में डूब मरूं ! अब ऐसा नहीं करूंगा, तुमने मुझे बचा लिया—हां, और देख कर बताओ तो ?"

"और देख कर बताऊं तो पर..........." कहते-कहते थोड़ा रुक कर वह पुनः बोला,—"एक विघ्न बीच में बहुत जबर्दस्त आ पड़ा है।"

अय्यर का मुख एक बार फिर पीला होते-होते रुक गया। साहस करके बोल उठा,—"जो कुछ भी हो, तुम कह डालो जल्दी से !"

और वह जिज्ञासा भरी दृष्टि से इस प्रकार हरेन्द्र को देखने लगा जैसे एक विद्यार्थी परीक्षा देने के बाद उसका फल सुनने के समय अपने परीक्षक की ओर देखता है। हृदय का स्पन्दन तीव्र होने के साथ-साथ ही उसके हाथ-पांव और होठों में एक हल्की कंपकपी-सी भी होने लगी थी। हरेन्द्र को उसकी अवस्था पर जितनी हंसी आती थी; मुझे उसकी रोनी सूरत देख कर उतना ही हार्दिक दुःख होता था।

"देखिये साहब, यूं तो सब ठीक है आपकी आयु-रेखा में—हरेन्द्र ने कहना शुरू किया,—"पर एक स्थान पर जो यह थोड़ी सी कट गई है बीच में—बस. इसी से काम खराब हो गया है। समझ गये न आप मेरा मतलब ? यह अगर यहां से कटी न होती तो बहुत ही अच्छा था !"

"इस रेखा के बीच में कट जाने का क्या मतलब होता है ?" उसने बड़ी शीघ्रता से प्रश्न किया।

"कटी हुई बहुत अधिक है," हरेन्द्र बोला,—"इसलिये इसका प्रभाव सीधा प्राण के ऊपर भी पड़ सकता है। यदि मामूली ढंग से ही कटी-फटी होती तो थोड़ी-बहुत बीमारी होने के बाद पुनः शीघ्र ही अच्छे हो जाते। परन्तु यह तो इतनी गहरी कट गई है कि मृत्यु का भय ...."

"ओह मृत्यु का भय !" घबरा कर वह बीच ही में बोल उठा,—"यह तो वही बात हुई; अस्सी वर्ष तक फिर जीवित कौन रहेगा ?"

हरेन्द्र ने उसे सान्त्वना देने के ख्याल से कहा,—"आयु तो आपकी पूरे अस्सी वर्ष की है; किंतु यदि आप इस झटके को पार कर गये तब !"

बेचारे ने अच्छी हस्त-रेखा दिखलाई कि एक नई चिंता ही मोल ले बैठा। अनेक क्षण चुपचाप बैठा कुछ सोचता रहा और

अंत में दीर्घ श्वास खींच कर बड़े फीके शब्दों में बोला,—"अच्छा, हरेन्द्र ! यह तो बताओ, यह झटका आयेगा किस उम्र में ?"

अंगुलियों को मोड़-तोड़ कर हिसाब लगाने के बाद हरेन्द्र ने कहा,—"तीस से लेकर चालीस वर्ष की आयु तक; जिसमें पैंतीस और छत्तीस वर्ष की आयु आपकी विशेष महत्वपूर्ण कही जा सकती है। इन वर्षों में यदि आप अपनी रक्षा कर सके तो इसमें सन्देह नहीं कि फिर पूरे........"

"पैंतीस और छत्तीस वर्ष !" अस्फुट ध्वनि में गुनगुना कर वह स्वतः ही बोल उठा,—"यही तो है वह समय ! मेरे जीवन का सब से महत्वपूर्ण समय यही तो है। मेरे मित्रो ! बचालो, मुझे बचालो इस आने वाली मृत्यु के मुखसे !! तुम लोगों का उपकार जीवन भर कभी नहीं भूलूंगा। इस झटके से निकल गया तो पूरे अस्सी वर्ष की आयु तक जीवित रहूंगा। हरेन्द्र ! मिस्टर वर्मा !! बचालो मुझे इस झटके से, भाई !

इतना रोया, इतना गिड़गिड़ाया कि बेचारे को हिचकियें आनी भी शुरू हो गईं। बड़ी कठिनाई से किसी तरह उसे शान्त भी किया तो इस शर्त पर कि जैसे भी हो हमें उसके जीवन की रक्षा करके निकालना ही होगा, नागा लोगों के इस दुर्ग के भीतर से—भले ही इसमें हम दोनों में से किसी एक का प्राणान्त ही क्यों न हो जाये ! बड़ी बड़ी प्रतिज्ञायें करने और दृढ़ता पूर्वक बचनबद्ध होने के बाद, तब कहीं जाकर वे हज़रत शान्त हुए। सरकारी सेना में एक एयर-गन चलाने वाले बहादुर आदमी के पक्के दिल का यह हाल था।

८

नरक-कुण्ड की दिशा में

सरिता के तट पर बैठे-बैठे हम लोगों को पूरे दो घंटे से भी ऊपर हो गया, इस बीच अय्यर ने अपने जीवन की रक्षा का भार भी पूर्ण रूप से हम दोनो के ऊपर डाल दिया, किन्तु इतना समय बीत जाने पर भी वे पांचों नागा अपनी-अपनी गुहाओं से अभी तक भी वापस न लौटे थे। ऐसा जान पड़ता था जैसे वे लोग हमें पूर्णतः एक सुरक्षित स्थान पर बैठा कर एक दम निश्चिन्त हो गये हैं।

भगवान भुवन भास्कर अपने नित्य के परिचित मार्ग से लगभग आधी यात्रा नभ मण्डल में समाप्त कर चुके थे और अब यथा शीघ्र पश्चिमीय क्षीतिज की दिशा में अनुगमन करने की तय्यारी कर रहे थे। अनन्त नीलाकाश से उतरी हुई सूर्य की असंख्य प्रखर किरणें घाटी में चारों ओर फैल कर अद्वितीय आभा के साथ ही साथ प्राणीमात्र में नये उत्साहवर्द्धक जीवन का संचार कर रहीं थीं।

आकाश के मध्य में चमकते हुये सूर्य को देख कर कोई भी सरलता पूर्वक अनुमान लगा कर यह कह सकता था कि दिवस के दो प्रहर व्यतीत हो चुके थे। मध्यान्ह होने के कारण भूख भी अब हम लोगों को बुरी तरह से सताने लगी थी। औरों की तो मैं कह नहीं सकता; किंतु मेरी तो कम से कम भूख के मारे बुरी दशा होने लगी थी। इस समय तो प्रायः सभी को भूख लग आती है, फिर मेरा ही क्या दोष ?

पके हुये फलों के वृत्तों को देख कर लोभसंवरण करना मेरे लिये कठिन हो उठा था। इसी आशा को लेकर मैंने एक बार हरेन्द्रकी ओर दृष्टिपात किया तो मुझे ज्ञात हुआ वह पहले ही से उधर दृष्टि स्थिर किये चुपचाप बैठा-बैठा ताक रहा था। इसमें कोई संदेह नहीं कि भूख के मारे उस समय हरेन्द्र की और मेरी एक ही दशा हो रही थी। मुझे अपनी ओर ताकते हुये देख कर वह स्वयं ही बोल पड़ा।

"भूख के मारे तो बुरा हाल हो रहा है, दादा! कहो तो दो-चार फल ही तोड़ लाऊं। आखिर यह हैं किस लिये ? खाने के लिए ही तो!"

इससे पहले कि मैं अपनी सम्मति प्रकट करूं, अय्यर बीच ही में बोल उठा,—"ना, ना, ना, ऐसी गलती कभी न कर बैठना, नहीं तो अनर्थ ही हो जायगा। अभी तो जीवन की थोड़ी बहुत आशा भी है, फिर तो वह भी नहीं रहेगी। चुपचाप बैठे रहो इसी तरह!"

"तुम बात-बात में अपनी टांग अड़ा बैठते हो जी !" हरेन्द्र ने खीज कर उसकी ओर घूरते हुये कहा,—"भूख के मारे तो यहां जान निकली पड़ रही है और तुम अपना ही स्वर अलापने में लगे हुये हो। आये तो थे मेहमान बन कर—पूछा भी नहीं किसी नेअभी तक !"

"तुम्हारी और अपनी भलाई के लिये ही ऐसा कह रहा हूं—आगे तुम्हारी मर्जी !" अय्यर ने दुःखपूर्ण शब्दों में समझाते हुए कहा।

"भलाई-वलाई तो बहुत हो चुकी। बस, अब चुप ही रहो—नहीं तो अनर्थ हो जायगा," क्रोधावेग से तिलमिलाता हुआ हरेन्द्र बोलता ही रहा.—"मेरे पास ग्यारह गोलियों से भरी हुई पिस्तौल इस समय भी मौजूद है; किंतु मैं नहीं चाहता कि जो गोली मेरे शत्रुओं का मस्तिष्क छेदने के समय लाभदायक सिद्ध होती है उसी को मैं अपने एक मित्र की हत्या करने के लिये प्रयोग में लाऊं। भलाई इसी में है कि बस चुपचाप मुहं बंद किये बैठे रहो।"

वही हरेन्द्र जो आयु में बड़ा होने के कारण हर समय अय्यर का सम्मान किया करता था; इस समय क्षुधाग्नि से झुलस कर जली-कटी बातों को सुना-सुना कर उसका अपमान करने पर उतारू हो गया था। अत्यधिक भूखा होने पर भी मैं शांत-चित्त से उन दोनों की बातों को हृदयङ्गम करता जा रहा था। मुझे भली भांति ज्ञात था कि अय्यर का ख्याल सोलहो आना ठीक और उचित

था; कारण जङ्गलों में रहने वाली नागा जाति बन-प्रदेश में पैदा होने वाले कन्द और फलों को खाकर ही अपना भरण-पोषण करते हैं अथवा जंगली पशुओं का शिकार खेल कर भी अपने उदर पूर्ति का साधन कर लेते हैं। इसी लिये उन लोगों ने अपने निवास-स्थान में भांति-भांति के फलदार वृक्षों को बड़े यत्न से लगा कर इतने बड़े किये थे। उन लोगों के लिये ऐसी वस्तुयें ही सर्वोत्तम-बहुमूल्य सम्पत्ति के तुल्य हैं। बाह्य-जगत का कोई भी मनुष्य वहां पहुंच कर उनकी आज्ञा के बिना ही फलों को तोड़ कर खाना अथवा बर्बाद करना शुरू करदे, तो इसे वे लोग भला कैसे सहन कर सकते थे। इसी लिये अय्यर ने हरेन्द्र को मना करने की चेष्टा करी थी; परन्तु भूख का सताया हुआ हरेन्द्र भी बेचारा क्या करे? मरने तो आये ही थे यहां; फिर खा-पीकर पेट भरने के बाद ही क्यों न मरा जाये?

अनेक क्षण इसी प्रकार वाद-विवाद में ही व्यतीत हो गये। लड़-भिड़ कर वे दोनों भी शांत हो गये थे। हरेन्द्र की फल तोड़ने की इच्छा भी शायद अब जाती रही थी। कारण, पके हुये फलों की ओर न देख कर, वह इस समय सामने के पहाड़ की ऊंची चोटी पर दृष्टि स्थिर किये हुये देख रहा था। जान पड़ता था जैसे अय्यर को गर्मागरम बातें सुना कर उसकी क्षुधाग्नि शान्त पड़ गई थी।

सहसा चार-पांच बालक भागते हुये हमारे पास आये। वे सभी हृष्ट-पुष्ट, गोल-भरे हुए चेहरे के सुन्दर एवं स्वस्थ बालक थे।

नित्य प्रात: से लेकर संध्या के अवसान काल तक जो बालक खुली हुई शुद्ध वायु में स्वच्छन्द रूप से जंगल और पहाड़ों में विचरते रहते हों, उन का स्वास्थ्य फिर क्यों न सुन्दर होगा ? देखने से ही विदित हो जाता था कि वे नागा लोगों की सन्तान हैं। स्वतंत्र जीवन के वे प्रत्यक्ष प्रमाण थे।

उन पांचों में से दो बालकों के हाथों में बड़े-बड़े पत्तों के भीतर छिपी हुई कोई खास वस्तु थी, जिसे वे अत्यधिक पसंद करने के कारण अपनी नंगी छाती से चिपकाये हुये जल्दी-जल्दी हमारी तरफ को झपटे चले आ रहे थे। हमारे पास आने में उन्हें कोई झिझक, किसी प्रकार का संकोच ही नहीं था; मानों वे छोटे-छोटे शिशु भी इस बात को भली-भांति जानते थे कि हम लोग इस समय उनके आधीन हैं।

सरिता के तट पर पहुंच कर पाँचों बालक ठहर गये और क्षण भर तक बारी-बारी हम तीनों की ओर आंखें फाड़-फाड़ कर देखते के देखते रहे मानों हमारे स्वभाव की जांच कर रहे हों। हरेन्द्र को उनकी यह हरकत जरा भी पसंद न आई। उठ कर दो-दो, चार-चार चांटे प्रत्येक को लगा कर उन्हें वहां से भगाने की उसे इच्छा हुई; किंतु मेरी तीक्ष्ण दृष्टि के संकेत ने उसे तुरन्त ही सावधान कर दिया, नहीं तो वह गज़ब ही कर बैठता।

उसी समय हमने देखा, दो बालकों ने बड़ी निर्भीकता से आगे बढ़ कर अपने हाथ के बड़े पुलंदे मेरी ओर बढ़ा दिये। मैं चुपचाप उन पुलन्दों को अपने हाथ में थाम कर उनकी ओर

ताकने लगा। अपनी ओर ताकते हुए देख कर मुझे उनमें से एक बालक ने संकेत से समझाया कि इन पुलन्दों के भीतर खाने की वस्तुयें हैं, जिन्हें खाकर सरिता का शीतल जल पान करके हम लोग अपनी भूख और प्यास मिटा सकते हैं।

संकेत पाते ही मैं ने उन पुलन्दों को खोल डाला। देखते ही हम तीनों का मन प्रसन्नता से झूम उठा—कारण, बड़े-बड़े हरे पत्तों के भीतर अनेक प्रकार के खाने योग्य पके हुए फल रखे थे, दो-तीन प्रकार की जड़ें (कन्द) तथा एक पत्ते में नमक लगा कर भूना हुआ हरिण का मांस भी था। देखते ही अय्यर और हरेन्द्र के मुख से तो पानी की लार टपकनी शुरू हो गई; बल्कि हरेन्द्र तो खुशी के मारे इतना झूम उठा कि लपक कर उसने उस बच्चे को ही ऊपर उठा लिया। पहले तो बालक बेचारा भय से कुछ चीख-सा उठा, पर जब उसने हरेन्द्र को प्यार करते हुए देखा तो चुपचाप अपने साथियों के पास अलग जा कर खड़ा हो गया। वे पांचो बालक दूर से खड़े हो कर हमारे खाने-पीने के ढंग को देखते रहे।

भूख से हम तीनों का ही बहुत बुरा हाल हो रहा था। अतएव खाना मिलते ही हम तीनों उस पर टूट पड़े। युक्त-प्रान्त का निवासी होने के कारण मेरी रुचि तो फलों की ओर ही अधिक थी; किन्तु वे दोनों—क्रमशः बंगाली और मद्रासी होने के कारण अधिकतर हरिण के मांस पर ही अपने-अपने हाथ साफ कर रहे थे। इस समय वे सब चीजें इतनी रुचिकर, स्वादिष्ट

और अमृत-तुल्य लग रहीं थी कि प्रत्येक ग्रास हमारे शरीर में एक नई शक्ति का संचार करता जा रहा था। नागा जाति के लिये जो कुछ भी दुर्भावनाएं इस समय तक हमारे हृदय में उत्पन्न हुई थीं, वे अब धीरे धीरे सब दूर होती चली जारही थीं। ठीक भी तो था, पेट भर भोजन देने वाला व्यक्ति ही तो आज-कल स्वामी बन बैठता है।

इच्छानुकूल भोजन करने के उपरान्त हम लोग पूर्ण तृप्ति का अनुभव करने लगे। इतनी देर में जाकर अय्यर के चेहरे पर कुछ रौनक सी आती दिखाई दी। हरेन्द्र का मुर्झाया हुआ दिल भी अब हरा हो चुका था। अपने स्वभाव के अनुकूल हास-परिहास का फव्वारा वह अब पुनः छोड़ने लगा था। सबसे पहले अय्यर की ही ओर कटाक्ष करके वह बोला,—"क्यों दादा, अब तो भाभी की याद नहीं आरही होगी ?"

मुस्कराते हुए अय्यर ने उत्तर दिया,—"अरे भाई उस बेचारी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो व्यर्थ उसके पीछे पड़े हुए हो !"

'वाह, साहब वाह ! यह भी एक ही रही." सरिता से दो-तीन अञ्जली भर-भर कर जल पीने के बाद वह बोला,—"इस बुढ़ापे के समय तुम्हें अकेला छोड़ कर वह वहां मजे कर रही हैं, यही क्या कम अपराध है ? फिर ऐसी विपद के समय भी तो तुम्हें..........."

"अब इन बातों का समय नहीं रह गया, हरेन्द्र !" मैंने बाधा

देकर उसे रोकते हुए कहा,—"मेरा ख्याल है कि इस समय हम सभी खूब अच्छी तरह से अपना-अपना पेट भर चुके हैं, इस लिये अब यह बचा हुआ खाना एक-एक भाग करके अपने-अपने थैलों में भर लो। कौन जाने, आगे आने वाला समय हम लोगों के लिए कैसा हो! इस लिये इन चीजों को व्यर्थ फेंकने से कोई लाभ न होगा।"

और इसके बाद ही हम तीनों ने बचे हुए फलों और मांस के टुकड़ों को समान रूप से बांट कर अपने थैलों में भर लिया। सशंकित दृष्टि से मेरी ओर देख कर हरेंन्द्र ने प्रश्न किया,—"क्या हमारे ऊपर अभी भी कुछ खतरा है, दादा? ऐसा है तो फिर यह खाना क्यों भेजा गया?"

मैंने हंस कर कहा,—"बलि चढ़ाये जाने वाले बकरे को क्या पहले इसी प्रकार खूब डट कर भोजन नहीं खिलाया जाता?"

"ओ बाबा, तो क्या हम लोग भी उन बलि के बकरों के समान ही हैं?" अज्ञात आशंका से कांप कर उसने पूछा।

"जी, महाशय जी!" उत्तर देते हुये मैंने कहा,—"हम लोग इस समय नागा जाति के आधीन हैं। बकरों अथवा अन्य पशुओं की अपेक्षा ये लोग मनुष्यों की बलि देना सर्व श्रेष्ठ समझते हैं। प्रायः सभी जंगली जातियों में ऐसी ही प्रथा प्रचलित है।"

"आप बिलकुल ठीक कह रहे हैं, मिस्टर वर्मा।" इस बार अय्यर ने मेरा समर्थन करते हुये अपना मुख खोला। बड़ी देर

से वह अपने अनुभवों के विषय में डींग नहीं हांक सका था; अब उसे थोड़ा-सा अवसर मिला था, अतः उसने कहना शुरू किया,—"जानने वाले लोगों का कहना है कि तमाम जंगली जातियों के देवता प्रायः मनुष्य-भक्षक होते हैं- इसी लिये वे मनुष्यों की बलि देना अधिक पसंद करते हैं।"

"तो अब यह निश्चिय हो गया कि हम लोग यहां बलि देने के लिये ही लाये गये हैं।" हतोत्साह के भाव से हरेन्द्र बोला,— 'बेचारे हैं बड़े दयावान ! भूखा-तड़पता हुआ जीव यह लोग नहीं मारते। खिला पिला कर पहले मज़बूत कर लेते हैं, तब उसकी भेंट चढ़ाते हैं।"

और सचमुच ही हरेन्द्र की बात खत्म होते न होते ही हम लोगों ने देखा, सामने की पहाड़ी पर से दो नागा उतरते हुये हम लोगों की ओर आरहे थे। दोनों के शरीर नग्न, केवल एक-एक छोटा टुकड़ा बाघम्बर का लपेटे—काले भुजङ्ग, भरी हुई मांस-पेशियों के भीमकाय देखने में भयंकर क्रूर स्वभाव के दोनों नागा, जिनके हाथ में इस समय केवल एक-एक दुधारा खड्ग, तथा एक-एक तीन फलकों का बल्लम था, लिए हुये बड़ी शीघ्रता से पहाड़ी पर से उतरते चले आरहे थे। पहाड़ी से उतर कर दोनों ने परस्पर कुछ बातें कीं और हमारी ओर बढ़ने लगे।

मिस्टर अय्यर तो उन्हें देखते ही इतना घबरा गया कि सांस लेने में भी उसे कठिनाई होने लगी। बड़ी दयनीय दृष्टि से मेरी

ओर ताक कर धीरे से उसने कहा—"भाई, वर्मा जी ! अब आप ही के हाथ में हम लोगों का जीवन-मरण है। यदि कुछ कर सको तो बहुत अच्छा हो।"

"घबराओ नहीं, मिस्टर अय्यर !" मैंने सान्तवना देते हुये उसे कहा,—"अभी कुछ करने का समय नहीं आया है। जब वह समय आयगा, तब आपके बिना कहे मैं स्वयं ही उसके लिये तैयार रहूंगा। किसी भी आने वाले विपद से आप हतोत्साह कदापि न हों। हम लोगों का जीवन ही आपत्तियों और विपत्तियों का केन्द्र है। अभी तक तो कोई कठोर व्यवहार हम लोगों के साथ किया नहीं गया है—यदि दुर्भाग्यवश ऐसा अवसर आ भी जावे, तो भी आप लोगों को घबराना नहीं चाहिये। जैसे भी हो अन्तिम श्वास तक हमें इनसे छुटकारा पाने के लिये चेष्टा करनी चाहिये।"

मेरी बात खत्म होते न होते ही वे दोनों नागा कांधे पर भारी खड्ग उठाये और एक हाथ में सिर से भी ऊंचा बल्लम थामे हमारे पास आकर खड़े हो गये। बारी-बारी हम तीनों की ओर देख कर वे दोनों परस्पर कुछ फुसफुसाये और दूसरे क्षण ही दोनों की दंत-पंक्तियें आकाश में घिरे हुये काले मेघों के बीच कड़कती हुई चपला के समान चमकने लगीं। जैसे कसाई अपने शिकार के बकरों की ओर देख कर सहसा प्रसन्नता से मुस्करा उठता है, वैसे ही वे दोनों भी हमारी ओर देख कर हर्षातिरेक से मुस्करा उठे—किंतु उन्हें शायद अभी यह बात विदित नहीं थी कि फौजी मनुष्यों को बलि चढ़ाने का इरादा करना मानों स्वयं

मृत्यु को आवाहन करने के समान था। इस का मूल्य उन्हें काफी महंगा चुकाना पड़ेगा। अस्तु

हमारी ओर क्रूर-दृष्टि से देख कर उनमें से एक नागा ने हमें उठने का संकेत किया और जब हम लोग अपने-अपने स्थानों पर उठ कर खड़े हो गये तो एक ओर चलने का सकेत करके वे लोग एक पहाड़ी की ओर चलने लगे। एक नागा पथ-प्रदर्शक बन कर हमारे आगे-आगे चलने लगा। उसके पीछे हम तीनों और हमारे पीछे वह दूसरा नागा,—इस प्रकार अपने बीच में करके वे लोग हमें एक पहाड़ी की ओर लेकर जाने लगे।

सुविस्तृत हरा मैदान समाप्त होने के बाद हम लोग सामने वाली पहाड़ी की जड़ में बनी हुई एक छोटी-सी गुहा के भीतर घुसे। पहले वह आगे वाला नागा, उसके पीछे मैं, मेरे पीछे हरेन्द्र, हरेन्द्र के पीछे अय्यर और तब उसके पीछे वह दूसरा नागा। इसी प्रकार एक एक करके हम लोग क्रमशः उस संकीर्ण गुहा के भीतर प्रवेश करके अंधकार में आगे की ओर बढ़ने लगे। गुहा का आकार इतना तंग और कम ऊंचा था कि हम लोगों को चलने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। झुके-झुके चलने के कारण पीठ और गर्दन भी दर्द करने लगी थी। यदि जरा भी सिर उठाने की चेष्टा करते तो तुरन्त ही पहाड़ की पथरीली छत से टकरा कर हमारा सिर झन्ना उठता था। ज्यूं-ज्यूं आगे बढ़ते जाते थे, त्यूं-त्यूं वहां की गंदी और सड़ी हुई वायु से हमारा दम घुटता जाता था।

लगभग डेढ़ फर्लाङ्ग तक हम लोग इसी प्रकार झुके-झुके चलते रहे; किंतु अब ऐसा मालूम होता था कि गुहा का आकार काफी लम्बा और चौड़ा होता जा रहा था। साथ ही गंदी सड़ी हुई वायु के दुर्गन्ध से हमारा माथा भी फटने-सा लगा था। सहसा मैंने देखा सामने वाला नागा भीषण चीत्कार कर उठा और एक बार जोर से उछल कर पृथ्वी पर लोटने लगा।

८

प्रेतात्मा ही तो है !

उस नागा को अकस्मात इस प्रकार गिरते हुये देख कर हम लोग भय और विस्मय से एक-एक पग पीछे हट गये। घोर अंधकार होने के कारण कुछ भी नहीं सूझ पड़ रहा था कि वहां किसी बड़े गड्ढे में पैर पड़ जाने से वह नागा गिर पड़ा था अथवा पत्थरों से ठोकर खाकर या पांव फिसल जाने के कारण ही उस अभागे की ऐसी दशा हुई थी। कारण जानने के लिये हम सभी बहुत उत्सुक थे; किंतु वातावरण ऐसा भयानक हो उठा था कि आगे बढ़ कर पता लगाने का किसी को साहस ही नहीं हो पाता था। हरेन्द्र और अय्यर भय से काँपते हुये मेरे पास आकर खड़े हो गये थे। एक-दूसरे से सट कर खड़े होने के कारण हमें काफी सान्तवना मिल रही थी। कोई भी विशेष दुर्घटना होने पर हम लोग अब एक-दूसरे की सहायता भली प्रकार कर सकते थे।

अपने साथी को इस प्रकार चीत्कार करके गिरता हुआ देख कर पीछे वाला नागा पहले तो अनेक क्षण किंकर्तव्य-विमूढ़-सा एक ही स्थान पर खड़ा रह गया; किंतु फिर शीघ्र ही सतर्क हो कर उसने अपने हाथ के बल्लम को संभाला और खड्ग की मूठ को भी कसकर पकड़ने के बाद वह दो कदम आगे बढ़ा और अपनी भाषा में बुदबुदा कर उसने अपने साथी से कुछ पूछा। उत्तर में उसके साथी ने एक शब्द भी अपने मुख से नहीं निकाला; तब उस नागा ने और पास आकर प्रश्न किया, किंतु इस बार भी अपने साथी से कोई उत्तर न पाकर वह बहुत घबराया। अनेक क्षण चुप रहने के बाद उसने पुनः उच्च स्वर में अपने प्रश्न को दोहराया। इस बार एक हल्की-सी अस्फुट ध्वनि उस गिरे हुये नागा के मुख से निकली; किंतु वह इतनी मंद और अस्पष्ट–सी थी कि जिस का समझ सकना हमारे ही लिये नहीं, बल्कि किसी भी कान से सुनने वाले के लिये नितान्त असंभव था। उसके बाद फिर कोई भी शब्द उस ओर से नहीं सुनाई दिया।

अनुमानतः हम लोगों को ज्ञात हो गया कि वह नागा अब इस संसार से संबन्ध-विच्छेद करके सदा के लिये परलोक सिधार गया था। अपने साथी का यह दुष्परिणाम देख कर पहले तो दूसरा नागा अनेक क्षण चुपचाप खड़ा रहा; किंतु फिर सहसा उसे क्रोध चढ़ आया और उसने बड़ी जोर से चिल्ला कर अपने हाथ का बल्लम ऊपर उठाया। उसका इराद अपने सिर के ऊपर से घुमा कर वह बल्लम हमें मारने का था; किंतु भगवान की दया से

ऐसा न हो सका। या तो क्रोधावेग के कारण उसे गुहा की नीची छत का ध्यान ही नहीं रह गया था और या शायद घोर अंधकार छाया होने के कारण उसे वह छत दिखाई ही न दी थी। कारण कोई भी क्यों न रहा हो—परन्तु हुआ यह कि वह बल्लम छत से टकरा कर जोरदार झन्नाहट के साथ छूट कर दूर जा गिरा।

अत्यधिक क्रोध की दशा में मनुष्य पागल बन जाता है। क्रोधाग्नि की ज्वाला से ज्ञान-तन्तु झुलस जाते हैं और इसी लिये मनुष्य अज्ञानता की दशा में हित-अहित की बातें बिल्कुल सोच ही नहीं सकता। यही दशा उस समय उस नागा की भी हुई। यद्यपि उसका साथी अकस्मात ही किसी अज्ञात कारण से मारा गया था; किन्तु इसके लिये वह हमी लोगों को जिम्मेदार समझता था। उसे यह भ्रम होगया था कि हम लोगों में से किसी ने धोखे से उसके साथी को मार दिया था और इसी लिये वह अब इसका बदला हम लोगों से चुकाना चाहता था। जितने जोर से उसने वह बल्लम घुमा कर हमें मारने की चेष्टा की थी उतना ही जोर से पत्थरीली छत्त से टकरा कर वह बल्लम छिटक कर दूर जा गिरा और उसका हाथ भी झन्ना उठा।

पहला वार खाली जाता हुआ देख कर भी उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ; प्रत्युत अग्नि पर घी के समान और भी द्विगुण होकर धकधका उठा। लपक कर बल्लम उठाने की भी उसने इस बार चेष्टा नहीं की। हाथ में थामे हुये दुधारा खड्ग को उठा कर वह हम

लोगों की ओर झपटा। परन्तु इस बार हम लोग पहले ही से सावधान होगये थे; और इसी लिये उसके झपटने के पूर्व ही हम लोग कूद कर दस कदम आगे जा पहुंचे। क्रोध से पागल बना हुआ वह नागा होठों ही होठों में बुदबुदाता और असंख्य गालियें बकता हुआ हम लोगों की ओर झपटा; किन्तु हमारे आश्चर्य का किया ठिकाना ही नहीं रह गया, जब कि उस नागा को भीषण चीत्कार करके ठीक उसी स्थान पर हम लोगों ने गिरते हुए देखा, जहां कि पहले वाला नागा गिरा पड़ा था।

हे भगवान् ! यह कैसा माया-जाल था ? स्वतन्त्र जाति के दो वीर नागा लोगों की इस प्रकार अनायास ही मृत्यु का होना कोई साधारण बात नहीं थी। हमारी आंखें इस समय तक भली भांति इस घोर अंधकार की अभ्यस्त हो चुकी थीं। धुन्धली सी छाया हमें उन दोनों पड़े हुए भीमकाय नागा लोगों की दिखाई दे रही थी। दोनों एक दूसरे की बगल में पड़े हुए इह-लौकिक लीलाओं को समाप्त कर चुके थे। दोनों ही इस समय निर्जीव थे; किन्तु उनकी आकस्मिक मृत्यु का कारण अभी भी हम लोगों के लिये सर्वथा अज्ञात ही था। यद्यपि जिस स्थान पर उन दोनों का मृतक शरीर पड़ा था, उससे थोड़ी दूर हट कर एक लम्बा गढ़ा पतली खाइ के समान दिखाई अवश्य देता था, किंतु उस गड्ढे में गिर कर किसी की इस प्रकार मृत्यु तो हो नहीं सकती थी। अनजान में यदि कोई उस मामूली गड्ढे में गिर भी पड़ता, तो भी अधिक से अधिक पांव में मोच आ जाती या कोई नस या हड्डी ही उतर

जाती—इससे अधिक और क्या हो सकता था ? उन दोनों की मृत्यु तो अवश्य ही किसी अन्य कारण से हुई होगी।

"ओफ़ ! ओह, हो, हो, हो ! क्या ग़ज़ब की सड़ायन्ध है !" अय्यर ने सहसा अपनी नाक भींचते हुये कहा,—"ऐसी दुर्गन्ध तो जीवन में आज से पहले कभी भी नहीं सूंघी होगी। ऐसा जान पड़ता है जैसे कि बहुत-सी लाशें लाकर यहां सड़ने के लिये डाल दी गई हों। भई, सच जानो, यहां तो अब एक मिनट भी नहीं रुका जाता—भाग चलो यहां से, भाग चलो। इसी में भलाई है !"

"जाओगे किधर ?" हरेन्द्र ने उसकी ओर घूम कर प्रश्न किया,—"इधर घूम कर वापस जाओगे तो वही हरा-भरा मैदान मार्ग में मिलेगा। नागा लोगों का तो वह ख़ास निवास-स्थान ही है—हम लोगों को अकेला देखते ही उन्हें संदेह हो जायगा और तब वे बिना पूछे ही हम लोगों पर बाणों की वर्षा करके हमारे प्राणों का अपहरण कर लेंगे। ऐसी दशा में उधर को जाना ठीक होगा क्या ?"

"तो भाई उधर जाने को कहता ही कौन है ?" अय्यर ने उत्तर देते हुये कहा,—"जिस कंटकपूर्ण मार्ग को छोड़ कर हम लोग यहां तक चले आये हैं; अब पुनः उसी पर जाने की हमें क्या ज़रूरत ? आओ, हम लोग उस सामने वाले मार्ग से आगे बढ़ें !"

"आप भूल रहे हैं, मिस्टर अय्यर !" हरेन्द्र ने विरोध करते हुए कहा,—"उस मार्ग पर अग्रसर होने का मतलब ही मानों

स्वयं अपनी मृत्यु को निमंत्रण देने के बराबर है। आपको विदित होना चाहिये कि वह मार्ग सीधा यहां से नरक-कुण्ड की ओर गया है।

"नरक-कुण्ड की ओर ?" विस्मय-विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देख कर वह बोला,—"यह तुम कहते क्या हो, हरेन्द्र ?"

"ठीक कहता हूं, महाशय जी ! मैं बिल्कुल ठीक कहता हूं," सगर्व छाती फुला कर गंभीर शब्दों में वह बोला,- 'यह मार्ग सीधा उस नरक-कुण्ड की ओर गया है, जहां प्रेतात्माओं का अखण्ड राज्य है। असंख्य प्रेतात्माएं जहां नित्य इधर-उधर घूमती रहती हैं।"

"ओ बाबा, क्या तुम सच कह रहे हो, हरेन्द्र ?" सहसा घबरा कर वह पूछ बैठा। हृदय बड़े वेग से स्पन्दन करने लगा।

"तुमसे झूठ बोल कर मुझे कौन 'विक्टोरिया क्रास' जैसा मूल्यवान पदक भेंट कर देगा ?" हरेन्द्र ने उपेक्षा के भाव से उत्तर देते हुए कहा,—"जो कुछ भी मैं कह रहा हूं, बिल्कुल ठीक कह रहा हूं—और इसकी सत्यता प्रमाणित करने को भी मैं तैयार हूं।"

अभी तक मैं चुपचाप खड़ा हुआ उन दोनों की बातें सुन रहा था, किंतु हरेन्द्र की बातों ने मेरा ध्यान उस ओर आकृष्ट ही नहीं,

बल्कि उसमें दिलचस्पी भी बढ़ा दी। मैंने वर्द्धित उत्सुकता को दबाते हुये पूछा,—"कैसे प्रमाणित कर सकोगे, हरेन्द्र ?"

हरेन्द्र ने मेरी ओर चकित भाव से दृष्टि घुमा कर देखा; मानों उसे मेरे मुख से ऐसा प्रश्न सुनने की कदापि आशा ही नहीं थी।

उसका भ्रम दूर करने के अभिप्राय से मैंने पुनः अपने वाक्य को दोहराते हुये कहा,—"तुम कहते थे ना, कि इस गुहा के मार्ग से आगे बढ़ने पर एक नरक-कुण्ड मिलेगा—जहां पर बहुत-सी प्रेतात्मायें स्वच्छन्द रूप से इधर-उधर विचरती हुई दिखाई देंगी। ऐसा तुम किस आधार पर कहना चाहते हो ? कभी तुमने अपनी आंखों से भी ऐसी प्रेतात्माओं को देखा है या कोरी कल्पना ही···"

"हुश !·······चुप रहो जरा !" सहसा अय्यर ने लपक कर मेरा एक हाथ पकड़ लिया और उसे भरसक दबाते हुए बोला,—"वह देखो, उस ओर-वह सामने जो गुहा के मोड़ पर एक छोटी-सी चट्टान नज़र आती है, उसके दूसरी तरफ—जरा पीछे की ओर देखो गौर से !"

अज्ञात भय से कांप कर हरेन्द्र भी इस समय हम दोनों के साथ ही बिल्कुल सट कर खड़ा हो गया था। एक ओर हरेन्द्र, दूसरी ओर अय्यर—उन दोनों का एक-एक हाथ थामे हुये मैं स्वयं बीच में खड़ा था। हम तीनों एकटक दृष्टि से उसी ओर देख रहे थे इस समय।

सचमुच अय्यर के बताये हुए स्थान पर जो कुछ हमने देखा; उससे न केवल हमें उस समय रोमांच ही हो आया, बल्कि साथ ही हम तीनों भय से कांप भी उठे। शरीर जड़वत् होकर जैसे वहीं जम-सा गया था; हिलने-डोलने की शक्ति भी हमारे अन्दर नहीं रह गई थी उस समय। पाँव मन-मन भर के होकर जैसे उसी स्थान पर चिपक-से गये थे। लाख चेष्टा करने पर भी हम लोग वहां से खिसक न सके।

और वह छाया, जिसे अय्यर ने संकेत करके अभी हम लोगों को दिखाया था—धीरे-धीरे उस छोटी-सी चट्टान के पीछे से निकल कर इसी ओर को अग्रसर होती हुई चली आरही थी। घोर अंधकार में दूर से वह छाया केवल एक धुन्धली छोटी-सी परछाईं ही दिखाई देती थी; किंतु अब ज्यूं-ज्यूं वह हमारी ओर बढ़ती आती थी, त्यूं-त्यूं उसका आकार पूरे एक मनुष्य के बराबर होता चला जा रहा था। गुहा की दीवार के साथ-साथ चिपक कर चलती हुई वह छाया ठीक एक प्रेतात्मा के सदृश्य ही ज्ञात होती थी।

"ठीक, प्रेतात्मा ही तो है !" उस चलती हुई छाया को देख कर अनायास ही मेरे मुख से निकल गया।

यद्यपि प्रेतात्माओं में मेरा विश्वास बहुत कम, बल्कि एक प्रकार से नहीं के बराबर ही है—किन्तु उस घोर अंध-कूप के भीतर, जहां चारों ओर भीषण अंधकार छाया हुआ था, तिस पर

भी ऊपर से सड़ी हुई लाशों की दुर्गन्ध के कारण वहां का वातावरण और भी भयावह हो उठा था। ऐसी दशा में किसी अज्ञात छाया को चलती-फिरती देख कर अनायास ही प्रेतात्मा होने की कल्पना कर बैठना कोई अनुचित न होगा।

हरेन्द्र और अय्यर दोनों मेरे साथ सटे हुये खड़े थे; इधर-उधर से दोनों ने मेरे हाथों को खूब कस कर पकड़ रक्खा था। दोनों की नाक से निकला हुआ गरम-गरम सांस तीव्र गति से मेरे हाथों के नग्न भाग पर पड़ रहा था। भय-त्रस्त होकर वे दोनों बुरी तरह से कांप रहे थे। मेरे हाथ पर रक्खा हुआ अय्यर का वह हाथ इतना शीतल लग रहा था, जैसे किसी ने बर्फ का एक टुकड़ा कहीं से लाकर मेरे हाथ के ऊपर रख दिया हो !

"वह छाया तो इसी ओर को बढ़ती चली आरही है, दादा !" सहसा हरेन्द्र ने मेरे कान के पास अपना मुख ले जाकर बहुत धीमे स्वर में फुसफुसा कर कहा,—"क्या करोगे ? क्या करने का इरादा है, दादा ? कहो तो अपनी पिस्तोल निकाल कर तैयार कर लूं ?"

"प्रेतात्माओं के ऊपर पिस्तौल या बन्दूक की गोलियें असर नहीं करती हैं, हरेन्द्र !" मैंने उसे समझाते हुये कहा,—"मनुष्य-कृत गोला-बारूद का प्रयोग स्थूल शरीरों पर ही किया जा सकता है—सूक्ष्म शरीरों पर नहीं। दिव्य-देह इन सब बातों से एकदम परे है।"

"हे भगवान, तो अब क्या होगा ?" भय से कांपता हुआ अय्यर चिल्ला उठा और मेरे साथ एकदक चिपक कर बोला,— "शूक्ष्म शरीर धारण करने वाली इन प्रेतात्माओं से अपनी रक्षा कैसे की जायगी, मिस्टर वर्मा ? शीघ्र कोई उपाय कीजिये, नहीं तो वह देखिये—व :—वह ...."

कहता हुआ घिघिया कर वह हठात् मेरे साथ लिपट गया। अकस्मात ऐसा करने का कारण यह था कि वह छाया अब बिल्कुल हम लोगों के पास आ चुकी थी और ढंग देखने से ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि वह हमारे ऊपर अब आक्रमण ही करना चाहती थी। दोनों हाथ सिर के ऊपर तक फैला कर हवा में लहराते हुये, इस प्रकार पैशाचिक नृत्य करती वह छाया एक-एक पग हम लोगों की ओर बढ़ रही थी, मानों अब हम लोगों को उठा कर भक्षण ही कर जायगी। हरेन्द्र और अय्यर के साथ ही मैं भी अब अपने जीवन से हताश हो गया था। वातावरण और भी भयावह हो उठा। हृदय का स्पन्दन और भी तीव्रतर होने लगा। अपने चारों ओर हमें मृत्यु की भीषण विभीषका ही नज़र आने लगी।

ऐसे अवसरों पर जबकि मृत्यु हमें आलिङ्गन करने को बिल्कुल हमारे सम्मुख आ खड़ी हो—कभी-कभी दिमाग बहुत अच्छा काम कर जाता है। हृदय का स्पन्दन तीव्र होने के कारण रक्त-प्रवाह विद्युत-गति से होने लगता है—और इसी लिये शायद मस्तिष्क उस समय एकदम परिष्कृत हो जाता है। यही दशा मेरी भी हुई। मृत्यु के भय से जब कि मैं जीवन से बिल्कुल

निराश एवं हतोत्साह हो चुका था—सहसा किसी अज्ञात प्रेरणा ने मुझे एक नई शक्ति, अदम्य साहस और अद्भुत बल प्रदान किया। क्षणमात्र में ही मेरा समस्त भय दूर हो गया; और ठीक उस समय जबकि वह छाया हम लोगों से केवल पांच कदम की दूरी पर ही रह गई थी, मैं बोल उठा—

"हरेन्द्र, लपक कर उस मरे हुए नागा का बल्लम उठाकर अपने कब्जे में कर लो—वह देखो, वह तुम्हारे पांव के पास ही तो पड़ा हुआ है। जल्दी करो बस !" और यह कहते न कहते ही मैंने भी दूसरे मृत नागा का बल्लम उठा कर बड़ी मजबूती से अपने हाथों में थाम लिया। हरेन्द्र के हाथों में बल्लम जैसा मजबूत और लम्बा हथियार आते ही वास्तव में उसका सारा भय दूर हो गया। बल्लम से उसे बड़ा सहारा मिला। अब कम से कम अवसर आने पर वह दूर से अपनी रक्षा तो कर सकता था।

अय्यर को अपने पीछे करके हम दोनों उसके आगे परस्पर एक-दूसरे के साथ सट कर खड़े हो गये। बल्लमों को दोनों हाथ से मज़बूत थाम कर हम लोगों ने उनकी नोक सीधी सामने की ओर करदी,—अब यदि कोई हमारे ऊपर आक्रमण करनें का दुस्साहस भी करेगा तो कम से कम पहले उसे बल्लम के त्रिफला नोकों का मजा तो अवश्य ही मिल जायगा, बाद में चाहे कुछ भी होता रहे।

हम लोगों को इस प्रकार सावधानी से खड़े हुए देख कर

वह छाया भी क्षण भर के लिये जहां की तहां ठिठक कर खड़ी हो गई। उसके बाद दूसरे क्षण ही हमने सुना उस छाया के मुख से पैशाचिक अट्टहास निकला और वह तमाम गुहा दूर तक गूंजने लगी।

एक के बाद ही एक लम्बी छलांग लगाकर वह छाया हमारे पीछे खड़े हुए अय्यर के ऊपर कूद पड़ी और फिर उसके बाद अय्यर का करुण आर्त्तनाद !........ओह, भगवान !........ओह ! ....ओह !........ओह !.........। बस, फिर पूर्ण निःस्तब्धता छा गई।

१०
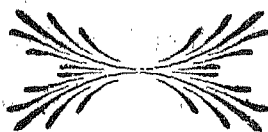
फिर वही तीन तिकड़म !

"भई, वाह, तुमने तो बिल्कुल कमाल ही कर दिया !" अय्यर ने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा ।

"ऐसा न करता तो उन पिशाचों से आप लोगों का छुटकारा कैसे होता ?" गर्व से छाती फुला कर उसने उत्तर दिया ।

"तो क्या उन दोनों नागा लोगों को मारने का श्रेय भी तुम्हीं को है, रहमान ?" मैंने आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुये पूछा ।

"जी, उन दोनों को भी इसी सेवक ने यमपुर पहुंचाया है ।" रहमान ने अपने हाथ के दुधारे खड्ग को दिखाते हुये कहा,—"यह देखिये, इसी खड्ग से मैंने उन दोनों नर-पिशाचों को इस दुनिया से विदा किया है । यह न होता तो मैं इस समय कुछ भी नहीं कर सकता था ।"

"मगर यह सब हुआ कैसे ?" अय्यर ने बड़ी दिलचस्पी के साथ प्रश्न किया,—"तुम्हारे पास यह खड्ग आया ही कैसे ?"

"भई, यह बातें तो बाद में भी होती रहेंगी," मैंने वहां के वातावरण से ऊब कर कहा,—"दुर्गन्ध के मारे सिर फटा जाता है। पहले यहां से निकल कर किसी अन्य स्थान पर चलने का उपाय करना चाहिये। नहीं तो कौन जाने फिर किसी विपद में न फंस जायें।"

"यही तो सबसे बड़ी और कठिन समस्या है हम लोगों के लिये।" रहमान ने स्थिति पर विचार करने के बाद हम लोगों को समझाते हुए कहा—"यह गुहा बहुत लम्बी और उतनी ही भयानक भी है। आप लोग जिस हरे-भरे मैदान से होकर इसमें आये हैं; उसी मार्ग से मुझे भी लाकर वे लोग यहां छोड़ गये थे। आपको याद होगा, हैड साहब की (मेरी) आज्ञा से मैं यहां की स्थिति का पता लगाने के लिये जहाज के पास से आया था। घूमता हुआ उस सामने वाले पहाड़ की चोटी पर जा पहुंचा। मेरा ख्याल था कि सबसे ऊंची चोटी पर चढ़ कर देखने से यहां के सब स्थान मुझे भली प्रकार दिखाई दे जायंगे; और इसी लिये मैं उस उच्चतम शिखर पर जा पहुंचा। अनेक क्षण इधर-उधर दृष्टि घुमा कर मैं वहां की स्थिति का अन्दाजा लेता रहा; किंतु दूर-दूर तक पहाड़ों की बेतर्तीब फैली हुई चोटियों के सिवा मुझे और कोई भी बात नई नहीं मालूम हुई। तब मैं वहां से घूम कर

दूसरी पहाड़ी पर उतरने लगा। उस पहाड़ी के नीचे एक छोटी-सी पगडण्डी देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ—कारण, पगडण्डी होने का मतलब था कि यहां मानव जाति का निवास भी अवश्य ही होगा। परन्तु इतना समय बीत जाने पर भी मुझे किसी मनुष्य का चिन्हमात्र भी अभी तक नहीं मिल सका था। तो भी पगडण्डी देख कर ही मुझे काफी सन्तोष था और यह आशा कर रहा था कि कहीं न कहीं कोई मनुष्य दिखाई अवश्य देगा। मनुष्य के नाते कम से कम खाने-पीने का प्रबन्ध तो वह कर ही देगा।"

"जो, खाने का प्रबन्ध करना तो दूर रहा—उलटा हमारा ही शिकार करने को वे लोग तैयार हैं!" हरेन्द्र ने बीच ही में हंस कर कहा।

"हां, यह बात मैंने उस समय सोची भी नहीं थी।" रहमान ने पुनः कहना शुरू किया,—"अपने मन में इसी प्रकार सोचता-विचारता हुआ मैं उस पगडण्डी पर जल्दी-जल्दी आगे बढ़ता चला जा रहा था कि इतने में हठात् एक ओर से सनसनाता हुआ एक तीर आकर मेरी पीठ के पीछे बड़ी तेजी से घुस गया। यदि पानी की बोतल और जरूरी सामान का छोटा थैला उस समय मेरी पीठ पर लटकता हुआ न होता तो इसमें संदेह नहीं कि वह तीर कलेजे तक घुस कर मेरा प्राण जरूर ले लेता। थैले में घुसे हुये तीर को जल्दी से अलग करके मैंने उस दिशा को देखा तो हठात् भय से मेरी एक चीख निकल गई। हृष्ट-पुष्ट, काले-भुजङ्ग, देव-तुल्य ऊंचे-ऊंचे पहलवानों जैसे दो मनुष्य एक

चट्टान के पीछे से निकल कर मेरे पास आकर खड़े हो गये। प्रत्येक के हाथ में एक-एक बल्लम और कंधों पर लटके हुये धनुष-बाण थे। भरी हुई मांस-पेशियां और नंगा शरीर—केवल एक-एक टुकड़ा बाघम्बर का लपेटे, देखने मात्र से ही हृदय कांप उठता था। रक्तपूर्ण भयानक क्रूर आंखों से देखते हुये उन्होंने न जाने मुझे क्या-क्या कहा—मैं तो उनकी भाषा तनिक भी समझ न सका। हां, जब संकेत से उन्होंने मुझे अपने साथ चलने को कहा तब मैं समझा। यद्यपि इच्छा तो कदापि नहीं थी; किंतु अकेला था, इसलिये विरोध भी नहीं कर सकता था। बाध्य होकर मुझे उन लोगों के साथ जाना ही पड़ा। वे लोग मुझे लिये हुये उसी गज-कपाल शिखर पर पहुंचे और वहां से एक संकीर्ण गुहा के द्वारा हरे-भरे मैदान में ले गये। फल और पका हुआ हरिण का मांस देकर उन्होंने मेरा यथोचित सत्कार किया। मैं समझा बहुत भले मनुष्य हैं ये लोग और शायद खिला-पिला कर मुझे यहां से विदा कर देंगे। पर ऐसा न होकर हुआ उसके विपरीत ही। खाने-पीने से निवृत होते ही वे दोनों नागा मुझे जबर्दस्ती धकेलते हुये यहां लाकर इस सड़ी हुई एवं दुर्गन्धपूर्ण गुहा के अन्दर बन्द करके चलते बने। ऐसा था उनका आतिथ्य-सत्कार !"

"यही तो हम लोगों के साथ भी हुआ, भाई !" कह कर अय्यर जोर से खिलखिला कर हंस पड़ा। अन्य लोग भी उसके साथ हंसने में योग देने लगे। अपने साथियों को हंसता देख कर

मैं भी मुस्कराये बिना नहीं रह सका।

"अच्छा, यह तो बताओ तुमने इन दोनों नागा लोगों को कैसे इतनी आसानी से यमपुर पठा दिया ?" हरेन्द्र ने प्रश्न किया।

"यदि इस समय यहां थोड़ा-सा भी प्रकाश होता तो तुम्हें शायद पूछने की भी जरूरत न पड़ती !" रहमान ने उत्तर देते हुए कहा,—"जहां वे दोनों नागा मरे हुए पड़े हैं, वहां एक पतली-सी खाई पहले से खुदी हुई थी। मैं उसी के भीतर लेटा हुआ अपने छुटकारा पाने की तरकीब सोच रहा था। तुम कहोगे भला उस खाई में लेटकर सोचने की मुझे क्या जरूरत थी ? सो उसका भी एक विशेष कारण था। यह तमाम गुहा मुर्दा लाशों से भरी पड़ी है और उन्हीं लाशों के सड़ने से इतनी भीषण दुर्गन्धी फैल रही है। इस दुर्गन्ध से अपने आपको बचाने के लिये ही मैं उस खाई के भीतर लेटा हुआ था। यदि मेरा विश्वास नहीं होता तो तुम स्वयं भी उसमें लेट कर देख सकते हो। नीची भूमि होने के कारण वहां दुर्गन्ध इतनी नहीं पहुंच पाती, जितना कि ऊपर की वायु के साथ मिल कर फैली हुई है। इसी लिये मैं वहां लेट कर अपने भविष्य की बातों को सोच रहा था; कि इतने में मुझे आप लोगों के आने की पद-ध्वनि सुनाई दी। पहले मैंने यह नहीं सोचा था कि मेरी तरह आप लोग भी इन नर-पिशाचों के चंगुल में फंस चुके हैं। मेरा ख्याल था कि केवल नागा लोग ही दोबारा मुझे सताने के लिये यहां आ रहे हैं; और इसी लिये अपने स्थानसे चुपचाप उठ कर मैं एक मृत व्यक्ति के निकट गया—वह उस ओर तो

छोटी-सी चट्टान दिखाई दे रही है, उसी के पीछे बहुत-से-नर कङ्कालों का ढेर लगा हुआ है—उनमें से कुछ ताज़ा हैं और कुछ बहुत दिनों के पुराने हो चुके हैं। जो ताज़ा हैं; उन पर जहां तहां मांस अभी तक भी चिपका हुआ है। उसी मांस के सड़ने से गुहा के भीतर ऐसी भीषण दुर्गन्ध फैल रही है। हां, तो दूर से ही आप लोगों की पद-ध्वनि सुन कर मैं उस चट्टान के पीछे गया और एक मृत-देह के पास से पड़ा हुआ यह खड्ग उठा लाया और पुनः उसी खाई में चुपचाप लेट कर आप लोगों के आने की प्रतीक्षा करने लगा।"

"अब हमारी समझ में सब बातें आगई हैं," अय्यर ने अपना बड़प्पन दिखलाते हुए बड़े गम्भीर शब्दों में कहा,—"इस खाई के भीतर चुपचाप लेटे रह कर ही तुमने उन दोनों नागा के पांव पर आघात पहुंचाया होगा और उसी आघात को सहन न कर सकने के कारण उनकी मृत्यु हो गई!"

अय्यर की बात पर हम सब लोगों को हंसी आ गई। ऐसी मूर्खतापूर्ण बातें तो शायद एक बच्चा भी न कहता। किसी मनुष्य के पांव पर आघात पहुंचाने ही से क्या उसकी मृत्यु हो जाती है? यह बात आज अय्यर के मुख से हम लोगों ने पहिली बार ही सुनी थी। हम लोगों को एक-साथ मिलकर हंसते देख कर वह स्वयं ही कुछ लज्जित हो उठा। संकोच-निवारणार्थ बात पलट कर वह बड़ी शीघ्रता से कहने लगा।

"अरे भई, अब बातों ही बातों में यहीं उलझे रहोगे या इन अंध-कूप से निकलने का कुछ प्रयत्न भी करोगे ?"

"अभी पूरी बातें खत्म ही कहां हुई हैं, जो यहाँ से प्रस्थान करने की चेष्टा की जावे ?" हरेन्द्र ने परिहास करते हुए उत्तर में कहा।

अब और क्या शेष रह गया बाबा ?" अस्फुट ध्वनि में फुसफुसा कर वह स्वतः ही बोल उठा।

"आप यदि दोनों नागा के पास जाकर उनकी मृत्यु का कारण ढूंढने की चेष्टा करेंगे, तो भी शायद आपको आसानी से पता नहीं लग सकेगा।" रहमान ने अय्यर का भ्रम दूर करने के अभिप्राय से कहना आरम्भ किया,—"उन दोनों की मृत्यु अद्भुत ढंग से हुई है, जिसका पता मेरे सिवाय और किसी को भी नहीं लग सकता था। और यदि लग भी जाता तो इस समय तक वे नागा अपने बदले हम सब को ही यमपुर भेज दिये होते !"

"भाई, आखिर यह कौन-सी तरकीब थी जिससे उन नर-पिशाचों पर भी तुमने सरलता पूर्वक विजय प्राप्त कर ली ?" अय्यर ने बड़ी उत्सुकता से मुख टेढ़ा करके पूछा,—"बात छिपा क्यों रहे हो, रहमान ? जिन्हें तुमने मारा है आखिर वह हमारे शत्रु ही तो थे, कोई मित्र तो नहीं ?"

"तुम सदा ऐसी ही बातें किया करते हो, मिस्टर अय्यर ?" विरक्त होकर मैंने उसे ताड़ना देते हुये कहा,—"ज़रा-सी बात

को इतना महत्व देना—कम से कम आपस के मामलों में कदापि शोभा नहीं देता। कोई किसी को नहीं मारता—जब किसी की मृत्यु आ जाती है तभी वह मारा जाता है।"

अय्यर ने प्रत्युत्तर में एक शब्द भी अपने मुख से नहीं निकाला। बात किसी को बुरी न लगे इसलिये मैंने वह प्रसंग ही बदल दिया।

वहां के हृदय-ग्राही वातावरण से प्रायः हम सभी का मन अब ऊब चुका था. अतएव प्रत्येक की आंतरिक इच्छा वहां से बाहर निकल चलने की होरही थी। रहमान ने चेतावनी देते हुये हम लोगों को बताया,—"नागा लोगों में परस्पर काफ़ी संगठन है। इसी लिये आप लोगों को छोड़ने जो दो नागा यहां आये थे; इनके वापस पहुंचने में विलम्ब देख कर, बाहर की नागा जाति चैतन्य हो उठेगी, और यदि उन्हें किसी प्रकार सत्य घटना का पता चल गया, तो फिर हम लोगों में से एक भी व्यक्ति बच कर यहां से नहीं जा सकेगा।"

"तो चलो भाई, जल्दी निकल चलो यहां से बाहर!" अय्यर ने घबरा कर हम लोगों को धकेलते हुये कहा,—"मेरा ख्याल है इस छोटी चट्टान के पीछे से कोई न कोई मार्ग ऊपर जाने का अवश्य होगा—क्यों न चलकर उससे लाभ उठाया जाये?"

"मुझसे ज्यादा आपको यहां की स्थिति का ज्ञान नहीं हो सकता, श्रीमान जी !" रहमान ने उस ओर को बढ़ते हुए कहा। साथ ही हमें भी चलने का संकेत करके वह बोला,—"चलिये, आप लोगों को स्वयं ही सब बातों का पता अभी चल जायगा। एक छोटा सा मार्ग है तो अवश्य उस चट्टान के पीछे से; किंतु वह इतना ऊंचा और तंग है कि बिना दूसरे की सहायता के कोई भी उससे लाभ नहीं उठा सकता। यदि ऐसा न होता तो क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि मैं इस समय तक इसी गुहा के भीतर सड़ता रहता ? चेष्टा करने भी तो मैं नहीं निकल सका !"

अब हम उस चट्टान के पास पहुंच चुके थे। यहां से वह गुहा अन्य दिशा को घूम कर न जाने कितनी दूर आगे तक चली गई थी। हमें उस गुहा के भीतर ही भीतर दूसरे छोर तक जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। कारण, चट्टान के ऊपर उस गुहा की छत में गोलाकार एक बड़ा-सा छिद्र प्रकृति ने पहले ही से हमारे लिये बना दिया था। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे किसी ने गुहा के भीतर रोशनी या हवा आने के लिये जान-बूझ कर रोशनदान बना दिया हो। चेष्टा करने पर मनुष्य उचक कर उस छिद्र के द्वारा गुहा के ऊपर पहुंच सकता था; किंतु वह छोटी चट्टान इतनी ऊंची नहीं थी जो अकेला मनुष्य उसके ऊपर चढ़ कर छिद्र के बाहर हो सके। इसी लिये रहमान अभी तक उससे कोई लाभ नहीं उठा सका था। हां, यदि एक और मनुष्य उसकी सहायता के लिये वहां पहले से उपस्थित होता तो वह अब तक

कभी का अपने जहाज के पास पहुंच गया होता। रहमान हम लोगों से चार-पांच घन्टा पहले ही वहां पहुंच गया था, अतः वह ठीक से वहां की स्थिति को समझ गया था।

हम लोग एक-एक करके उस चट्टान पर चढ़ गये। चट्टान, ढालू और काई से चिकनी होने के कारण उसके ऊपर जम कर खड़ा होना बहुत कठिन था। हमारा विचार पहले रहमान को ऊपर चढ़ाने का था; कारण—वह वहां की स्थिति को भली प्रकार समझ चुका था, अतः उसी का आगे जाना नितान्त आवश्यक था। परन्तु डरपोक अय्यर इस बात को स्वीकार ही नहीं करना चाहता था। उसकी इच्छा सर्व प्रथम स्वयं ऊपर जाने की थी। बहुत-कुछ समझाने-बुझाने पर भी जब वह अपनी हठ से नहीं डिगा तो बाध्य होकर हमें उसी को आगे चढ़ाना पड़ा। रहमान ने अपने कंधे का सहारा देकर उसे उस छिद्र के द्वारा गुहा की छत पर पहुंचा दिया।

ऊपर जाने के बाद फिर हमें अय्यर की सूरत भी दिखाई नहीं दी। कहां चला गया, या उसका क्या हुआ—इस विषय में फिर हमें कुछ भी ज्ञात न हो सका। अब रहमान की बारी थी। अतएव हरेन्द्र ने अपने कंधे का सहारा देकर उसे भी छतके ऊपर पहुंचा दिया। हम लोगों का संकट टलने में अब अधिक विलम्ब नहीं रह गया था; क्योंकि एक-एक साथी हमारा क्रमशः इस बन्धन से मुक्त होता चला जा रहा था, और इसी लिये हमारी

प्रसन्नता का अब कोई ठिकाना ही नहीं रह गया था। पर दुर्भाग्य वश हमारी यह प्रसन्नता चिर-स्थायी न रह सकी। भाग्य में हमारे अभी और भी कष्ट सहने लिखे थे, इसी लिये तो ऐसा हुआ।

रहमान के ऊपर पहुंचते ही हठात् पहाड़ का वह खण्ड हरर्रा कर नीचे गिर पड़ा और अब वह छिद्र बिल्कुल ही बन्द होकर ऐसा हो गया, जैसे कभी उसका चिन्ह तक भी वहां नहीं था। पहाड़ के इतने बड़े खण्ड को छिद्र के मुख से हटाना कम से कम अय्यर और रहमान जैसे व्यक्तियों के वश की बात तो थी नहीं। उस मार्ग से बाहर निकलने की बात सोचना ही अब एक दम व्यर्थ था।

मनुष्य का निकलना तो दूर की बात रही—इस समय तो मुख से कहा हुआ एक शब्द भी उधर से इधर अथवा इधर से उधर नहीं जा सकता था। रहमान ने कुछ कहने की चेष्टा तो अवश्य ही की होगी; पर उसकी बातों का एक भी शब्द हमें नहीं सुन पड़ा।

जब तक उस छिद्र का मुख खुला था; तब तक उसके द्वारा थोड़ा-बहुत प्रकाश उस गुहा में बाहर से आता रहता था, किन्तु अब उसके बन्द होते ही प्रकाश का आना भी बिल्कुल बन्द हो गया। हम लोग चट्टान से उतर कर पुनः गुहा में चले गये। यहां से निकलने के लिये अब हमें स्वयं ही कोई न कोई

उपाय करना था । हरेन्द्र और मैं, दोनों ही इस विषय पर अनेक तरह विचार-विनिमय करते रहे । वहां से निकलने के केवल दो ही मार्ग शेष रह गये थे । एक तो वह, जिधर से हम लोगों ने प्रवेश किया था—और दूसरा वह, जहां यह गुहा जाकर समाप्त हुई थी । दोनों ही मार्ग हमारे लिये खतरे से खाली नहीं थे । एक ओर नागा जाति का निवास-स्थल था तो दूसरी ओर सुनते हैं—भयानक नरक-कुण्ड था । दोनों ही मार्ग मृत्यु के मुख तक गये थे ।

११

नरक-कुण्ड की सीमा पर

हरेन्द्र और म ज्यूं-ज्यूं उस गुहा से बाहर निकलने की चेष्टा करते थे, त्यूं-त्यूं कठिनाई एक नया रूप धारण करके किसी न किसी ढंग से हमारे मार्ग में बाधा उपस्थित कर देती थी। चलते-चलते हम दोनों थकावट से चूर भी हो गये थे, किन्तु फिर भी वह लम्बी गुहा समाप्त होने में ही नहीं आती थी। ऐसा जान पड़ता था, जैसे वह कभी खत्म ही नहीं होगी—जैसे उसका कहीं अन्त ही नहीं था। उस सीमा-रहित गुहा में चलते-चलते कभी हम दोनों को यह भ्रम होने लगता—जैसे समस्त नागा-पर्वतों की जड़ें खोखली हो गई हों और उनमें इसी प्रकार की असंख्य गुहाएं उत्पन्न हो कर हमें अपने गर्भ में छिपा लेना चाहती हों। क्यों आखिर? शायद नर-संहारक-युद्ध में भाग लेकर हमने कोई महान पाप किया था! अपने माता-पिता की

आज्ञा प्राप्त किये बिना ही हमने विदेशियों को संतुष्ट करने के लिये फौज में भरती होने की धृष्टता जो की थी। इतना ही नहीं; बल्कि ऐसा करके हमने अपने माता-पिता के प्रति, अपने देश-वासियों के प्रति, अपने जाति-धर्म और समाज के प्रति भयानक विश्वासघात किया था। उसी पाप का फल हमें यह भोगना पड़ रहा था। इसी कलंक को छिपाने के लिये भारत-माता की पवित्र भूमि हमें सदा-सर्वदा के लिये अपने गर्भ में छिपा लेना चाहती थी। इसी लिये तो लाख प्रयत्न करने पर भी हमें वहां से निकलने का मार्ग नहीं मिल रहा था।

जिस स्थान से रहमान और अय्यर गुहा के बाहर गये थे, वह स्थान अब हमसे काफी पीछे छूट गया था। हरे-भरे मैदान की ओर वापस जाने की अपेक्षा हमने गुहा के दूसरे छोर की ओर जाना ही अधिक उचित समझा; और इसी लिये उस छोटी चट्टान से उतरने के बाद हरेन्द्र से परामर्श करके हम इस ओर को चले आये। कोई डेढ़-दो सौ गज उस तंग और लम्बी गुहा में चलने के बाद भी हमें उसका अन्तिम छोर नहीं मिला। इस बीच कहीं-कहीं थोड़ा-सा धुन्धला प्रकाश अवश्य हमें नजर आ जाता था; किंतु उस प्रकाश के आने का मार्ग या तो इतना संकुचित होता कि उसमें से एक मनुष्य तो क्या, पक्षी भी उड़ कर दूसरी ओर नहीं जा सकता—और या प्रकाश आने का वह स्थान इतना दूर या ऊंचा होता कि हमारा वहां तक पहुंचना ही दुष्कर था। ऐसे अवसर पर प्रकाश की झलक देखते ही हमारे

शरीर में आनन्द की एक लहर–सी दौड़ जाती और बन्धन से मुक्त होने की आशा मन में जागृत हो उठती; किंतु दूसरे क्षण ही जब हमें वह आशा आकाश–कुसुम के समान प्रतीत होती तो चित्त की गति पुनः पूर्ववत् मन्द पड़ जाती और हम आगे बढ़ने लगते। वही आशा, वही उद्देश्य और वही कल्पना-शक्ति आगे बढ़ने के लिये फिर हमें बाध्य कर देती. और हम उसी प्रकार ऊबड़-खाबड़ भूमि पर अंधेरे में गिरते-पड़ते एक अज्ञात स्थान की ओर चलते रहते।

आगे चलते-चलते सहसा एक स्थान पर हमें ऐसा ज्ञात हुआ जैसा कि हम अब समतल की अपेक्षा नीचे को चले जा रहे हों। अकस्मात अपने पथ में यह परिवर्तन देख कर हमारा मन एक अज्ञात आशंका से थर्रा उठा। हम दोनों ने तुरन्त ही रुक कर वापस लौट चलने का निश्चय किया ; किंतु वह भी न हो सका। जान पड़ता था जैसे कोई अज्ञात आकर्षण-शक्ति हमें नीचे को ही खींच रही थी। इतना करने पर भी हम वापस नहीं लौट सकते थे। यदि वहां की भूमि केवल ढालू ही होती; तब तो लौटने में इतनी कठिनाई हमें कदापि न होती, किंतु वहां तो ढालू होने के साथ–साथ ही, भूमि में चिकनाहट और सीलन भी काफी थी। चिकनी मिट्टी के ऊपर चलने में एक तो यूं ही बड़ी दिक्कत का सामना करना पड़ता है– दूसरे, यदि वह मिट्टी सीलन अथवा नमी पाकर कुछ गीली हो गई हो, तब तो उसके ऊपर से होकर जाना कठिन ही नहीं, बल्कि सर्वथा असंभव ही हो उठता है।

अनेक बार चेष्टा करने पर भी जब हम उस मार्ग से वापस न लौट सके, तो फिर ढालू भूमि पर नीचे की ओर ही अग्रसर होने को हमें बाध्य होना पड़ा। उस स्थान पर गुहा का आकार बहुत छोटा और ऊंचाई में भी कम हो गया था। गुहा की दीवारों से जल-कण बिन्दु रूप में टप-टप नीचे टपकते हुये दिखाई दे जाते थे।

इतनी अधिक मात्रा में नमी का होना एकदम व्यर्थ कदापि नहीं कहा जा सकता। बुद्धि रखने वाला कोई भी मनुष्य यह देख कर स्पष्ट बता सकता था कि हम लोग उस समय निश्चय ही किसी जलाशय के नीचे से होकर गुजर रहे थे। हमारे सिर के ठीक ऊपर या तो कोई झरना पहाड़ से गिर कर समतल भूमि पर बहता होगा; या वहां पहले ही से शीतल जल का कोई सरोवर या इसी प्रकार का अन्य कोई जलाशय रहा होगा। तभी तो उसके नीचे इतनी नमी थी। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई और कारण हो ही नहीं सकता था। अस्तु कुछ भी हो, कहने का तात्पर्य यह कि उस नमी के कारण हम लोगों का उस समय बहुत ही बुरा हाल हो गया था। केवल चलने में ही यदि कोई बाधा हमारे सामने आ जाती तो, उसे हम जैसे-तैसे दूर भी कर लेते; किंतु भयानक शीत के कारण हमारे शरीर का रक्त जो जमता जा रहा था, उसका उपाय हम उस समय क्या कर सकते थे? वहां से निकलने में ज्यूं-ज्यूं विलम्ब होता जाता था, त्यूं-त्यूं कठिनाईयें भी हमारे लिये उग्र रूप धारण करती जा

रही थीं । शीताधिक्य के कारण हम दोनों के हाथ-पांव अकड़ गये थे । दंत-पंक्तियें एक-दूसरे के साथ चिपक कर ऐसे जम गई थीं, जैसे किसी ने कील ठोंक दी हों । शरीर का कोई भी भाग स्पर्श करने से ठीक बर्फ़ के समान प्रतीत होता था।

ऐसी बुरी दशा हो जाने पर भी, जीवन की आशा आगे चलने को अभी भी हमें बाध्य कर रही थी । यद्यपि निराशा चारों ओर से भयानक मुख फाड़े हमें अपने कराल गाल में दबोच लेने को सहर्ष तैयार थी; किन्तु जीने की इच्छा, आशा की क्षीण ज्योति के सहारे हमारे सोये हुए उत्साह को भड़का देती, और वही उत्साह शीत से जमे हुए रक्त में उष्णता भर देता । गरमी पाते ही नया रक्त नसों में दौड़ने लगता, और हम पुनः साहस करके आगे बढ़ने लगते थे । बड़ी बड़ी कठिनाईयों का सामना करते, गिरते-पड़ते जैसे-तैसे हमने वह दलदल से परिपूर्ण स्थान पार किया । उसके बाद ही हमें ऐसा प्रतीत हुआ जैसे अब पुनः हम लोग ऊपर चढ़ते जा रहे हों । धरातल में जल-कणों के गिरने से अत्याधिक नमी छा गई थी, और इसी लिये वहां की चिकनी मिट्टी ने दलदल का रूप धारण कर लिया था-किन्तु अब ज्यूं-ज्यूं हम लोग पुनः ऊपर चढ़ने लगे थे, त्यूं-त्यूं सूखी-पत्थरीली भूमि पर असंख्य छोटे बड़े पत्थर इधर-उधर बिखरे दिखाई देने लगे थे । चलते-चलते हम लोग इतना थक गये थे कि पांव एकदम जवाब दे बैठे थे; और बीच बीच में लड़खड़ा कर हम लोग शिला-खण्डों पर गिर पड़ते, पुनः उठते और चलने

की चेष्टा करते—पर थकावट बुरी तरह से हमारे मार्ग में बाधा उपस्थित कर देती। नोकदार शिलाखण्डों पर गिरने के कारण हमारे घुटने फूट गये, कोहनियां छिल गईं और जगह-जगह रक्तश्राव होने लगा।

ऊंचाई पर चढ़ने के बाद हमें एक बार फिर समतल भूमि के ऊपर से हो कर चलना पड़ा। संभवतः हम लोग इस समय उस लम्बी गुहा के अन्तिम छोर तक पहुंच चुके थे। कारण, हमारे सामने दो-तीन सौ गज के फासले पर मंद-मंद प्रकाश की एक अस्पष्ट-सी रेखा गुहा के भीतर खिंची हुई दिखाई दे रही थी। यूं ऐसे-ऐसे प्रकाश की झलक मार्ग में अनेक बार दिखाई दे चुकी थी; किंतु उसमें और इस प्रकाश में महान् अन्तर था। पहले वाले जितने भी स्थान पर हमने प्रकाश देखे, वह सब ऊपर से नीचे को पड़ते हुये देखे थे। इसका मतलब यह था कि वह प्रकाश पहाड़ की ऊंची-ऊंची चोटियों पर से गुहा में गिरता था; और इसी लिये हम इतनी ऊंची चोटियों पर चढ़ कर बाहर निकलने में सर्वथा असमर्थ थे। परन्तु इस बार जो प्रकाश की क्षीण रेखा हमारे सामने अस्पष्ट रूप से दिखलाई दे रही थी; वह ऊपर से न गिर कर सीधी सामने की ओर से ही गुहा के भीतर प्रवेश कर रही थी। स्पष्ट था कि अब कोई भी पहाड़ की ऊंची-सुदृढ़ दीवार हमारे मार्ग में खड़ी हो कर बाधा उपस्थित नहीं करेगी। उस प्रकाश की झलक ने सत्य पूछो तो हमारे मृत देहों में एक नया प्राण ही फूंक दिया। शीतल रक्त में उफाला

के साथ साथ नूतन उत्साह का संचार होने लगा। क्षण भर के लिये अतीत के समस्त कष्ट, सारे दुःख एवं सम्पूर्ण असह्य वेदनाओं को भूल बैठे; और जल्दी से जल्दी उस अंध कूप से निकल कर बाहर निकलने की चेष्टा करने लगे।

निमेषमात्र में हमने वह लम्बा फासला तय कर लिया। गुहा का अन्तिम छोर अब बिल्कुल हमारे सामने ही था। एक छलांग में हम उसे पार कर सकते थे; किंतु उस भयंकर गुहा को त्याग ने के पहले सहसा एक तीव्र वायु का झोंका अपने साथ सड़ी हुई लाशों की दुर्गन्ध लिये हुये इस जोर से आकर हमारे साथ टकराया कि हम लोगों को अपने पर नियंत्रण करना भी कठिन हो गया। नाक दबोचे-दबोचे ही हम लोग वहां से बाहर निकले।

ओह! यहां का दृश्य देखते ही हमें रोमांच हो आया। मानवजाति के रक्त का मूल्य रण-स्थल में जितना सस्ता है, उतना ही इस स्थान पर उनकी हड्डियों का दाम सस्ता था। असंख्य मनुष्यों के मृत-शरीर मांस-विहीन होकर केवल हड्डियों के ढांचे के रूप में वहां पड़े दिखाई दे रहे थे। प्रयः सभी नागा-जाति के दुधारे खड्गों द्वारा बध किये गये प्रतीत होते थे। किसी भी नर-कङ्काल के साथ उसके सिर का कहीं चिन्ह भी शेष नहीं था। ओफ, भूले-भटके पथिकों के प्रति नागा लोगों का यह अत्याचार वस्तुतः अन्यापूर्ण तथा नितांत असह्य था। मानवजाति का यह ह्रास क्या कोई भी हृदय रखने वाला मनुष्य अपनी आंखों से

देखना कभी पसन्द करेगा ? केवल अपने देवी-देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिये ही तो उस असभ्य जंगली जाति ने भेंट चढ़ाने के निमित्त उनका यह बध किया था ? ओह, ब्रह्मा की सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम सृष्टि को इस प्रकार अपने स्वार्थ के लिये नष्ट करने का अपराध क्या कभी क्षमा भी किया जा सकता है ? इस घोर पाप का दुष्परिणाम क्या स्वयं उन्हीं को नहीं खा जायगा ? किंतु समझाये कौन उन अन्ध-विश्वासियों को ? जिन्हें अपने कल्याण की चिंता नहीं, जिन्हें हित-अहित का तनिक भी ज्ञान नहीं—जो शुभ-अशुभ, मङ्गल-असमङ्गल और मनुष्य अथवा पशुओं में कोई अंतर ही नहीं समझते; उन्हें भला शिक्षा भी कौन और कैसे दे सकता है ? सभ्यता से परे—प्राचीनता के रंग में रंगे हुये, ऐसे जंगली जाति के लोगों पर किसी भले आदमी का सदुपदेश ठीक चिकने घड़े पर जल-बिन्दु के समान ही ठहरेगा। परमात्मा ही बचाये इन असभ्यों से !

मुर्दा लाशों को डांकते और कूदते-फांदते हुए हम दोनों उस तंग घाटी के पार निकल गये। यद्यपि वह भीषण गुहा अब समाप्त हो चुकी थी और अब उसके स्थान पर हम लोग एक खुली घाटी में पहुंच गये थे; तो भी इधर-उधर के ऊंचे पहाड़ों पर चढ़कर वहां के दूषित वातावरण से निकलना हमारे वश की बात नहीं थी। दोनों तरफ की ऊंची पहाड़िएं इतनी सीधी और खड़ी हुई थीं कि उन पर चढ़ना नितान्त असम्भव था।

लाशों का ढेर हम बहुत पीछे छोड़ आये थे, तो भी वायु के तीव्र झोंको के साथ वहां की सड़ी हुई दुर्गन्धी कभी कभी हमारे पास तक अब भी पहुंच जाती थी। यद्यपि नरक-कुण्ड की सीमा को लांघ कर हम अब पूर्णतः खुले वायुमण्डल में चल रहे थे; फिर भी उस तंग घाटी को पार करके हमें अब जल्दी से जल्दी अपने जहाज के पास पहुंचना चाहिये था—और यही बात हमारे लिये अभी तक कुछ अनिश्चित सी थी।

कोई नहीं जानता था कि वह घाटी कितनी दूर तक इसी प्रकार चली गई थी। चार-पांच घन्टे बराबर उस अंधकारपूर्ण गुहा के भीतर रहने के कारण हमें अब समय का भी कुछ ज्ञान नहीं रह गया था। घाटी के दोनों ओर की पर्वत-श्रेणिएं इतनी ऊंची थीं कि सूर्य के वहां दर्शन ही नहीं हो पाते थे। आकाश में फैला हुआ सूर्य की किरणों का तीव्र प्रकाश यद्यपि हमें दिन होने की साक्षी दे रहा था, पर ठीक समय का पता लगना कुछ कठिन ही था।

बराबर दो-ढाई मील तक उसी घाटी में चलने के बाद हमें एक स्थान ऐसा मिला, जहां से उस सीधे पहाड़ के ऊपर आसानी से चढ़ा जा सकता था। हरेन्द्र और मैं बड़े उत्साह से वहाँ की ढालू भूमि के द्वारा ऊंचे पहाड़ की चोटी पर चढ़ने लगे। थोड़े से परिश्रम के बाद अल्प समय के भीतर ही हम लोग उस पहाड़ की चोटी पर जा पहुंचे। हमें पूर्ण आशा थी कि इस पहाड़ पर चढते ही जहाज के पास पहुंचने का अवश्य ही कोई न कोई मार्ग हम लोगों को मिल

जायगा । परन्तु चोटी पर पहुंचने के बाद, यह देख कर हमें बड़ी निराशा हुई कि उस पहाड़ के दूसरी तरफ एक खाई इतनी गहरी थी कि यदि कोई ऊपर से अनजाने में गिर पड़े तो हड्डी-पसली का चूर्ण ही बन जाये। पर साथ ही यह देख कर हमारे मन में आशा का नया अंकुर भी फूट पड़ा कि उस पहाड़ के दक्षिण में, बीच वाली पर्वत-माला को छोड़ कर, तीसरे पहाड़ी टीले के ऊपर हमारा जहाज हल्के कुहासे की चादर में छिपा हुआ—अस्पष्ट ढंग से दिखलाई दे रहा था। ओह, यदि पंख होते तो हम फौरन ही उड़ कर पहुंच जाते—किंतु भगवान ने हमें पंख दिये ही कहां, जो अपनी इच्छा को पूर्ण करते ? हार कर हमें उस घाटी के नीचे उतरने की तरकीब ही सोचनी पड़ी। इसके सिवाय और कोई उपाय वहां पहुंचने का था ही नहीं। पहाड़ के ऊपर ही ऊपर जाने से तो हम लोग न जाने कहां के कहां पहुंच जायें; इसलिये उसी स्थान से नीचे उतरना ठीक समझा गया।

पहाड़ की जिस चोटी पर हम लोग उस समय खड़े हुये थे; वह दूसरी ओर से एकदम सीधी दीवार के समान दिखाई देती थी। ऐसा जान पड़ता था, जैसे प्रकृति ने स्वयं अपने विशाल हाथों से काट कर उस ओर बिल्कुल चिकना कर दिया हो। ऐसे सीधे पहाड़ पर से, जिस पर पांव टेकने का भी कहीं ठौर न हो—कैसे नीचे उतरा जा सकता था; किंतु जैसे भी हो, उतरना तो था ही। अतएव हम दोनों वहीं बैठ कर नीचे उतरने की विधि

सोचने लगे। इतने ऊंचे पहाड़ से गहरी खाई में उतरना कोई साधारण बात नहीं थी। उस ओर न तो वृक्ष ही थे उस पहाड़ पर, और न छोटी-बड़ी किसी तरह की झाड़ियें ही थीं वहां—जिन्हें पकड़ कर सहारा लेते हुये हम लोग नीचे उतर जाते। बड़ी कठिन समस्या थी हमारे सामने ! कैसे उतरा जायगा इतने ऊंचे पहाड़ के ऊपर से ? कोई भी तो तरकीब हमारी समझ में नहीं आ रही थी उस समय। यदि उस ओर दो-चार वृक्ष अथवा झाड़ियें ही होतीं, तो भी उनके सहारे हम नीचे उतर जाते; किंतु वहां तो बिल्कुल मैदान ही साफ था। ओह, कैसी उलझन में फंस गये थे हम लोग यहां आकर !

सहसा हरेन्द्र के मुख पर हास्य की एक स्पष्ट रेखा खिंचती हुई दिखाई दी। मुझे अपनी ओर देखते हुये लक्ष्य करके वह बोला,—"वह देखिये, उस ओर दो मोटी लतायें ऊपर से आधी दूर तक लटकती हुइ दिखाई दे रही हैं। क्यों न चल कर उनसे लाभ उठाया जाये ?"

सचमुच हरेन्द्र ने ठीक ही कहा था। उस ओर नारियल के मोटे रस्से के समान दो जंगली लतायें पहाड़ की चोटी से लेकर आधी दूर नीचे तक लटक रही थीं। वे यदि काफी मजबूत हों, तो हम बड़ी आसानी से नीचे उतर सकते थे। परीक्षा करने के लिये हम तुरन्त ही उठ कर वहां चले गये।

भली प्रकार देखने के बाद हमें वह दोनों लतायें काफी

मजबूत मालूम हुईं। अतः भगवान का नाम लेकर हम दोनों एक साथ ही उन्हें पकड़ कर नीचे लटक गये। धीरे-धीरे खसकते हुये हमने आधा मार्ग बड़ी सुगमता से तय कर लिया; नीचे पहुंचने में वैसे अब कोई विशेष कठिनाई भी नहीं रह गई थी, किंतु नहीं कह सकते कैसे—दुर्भाग्यवश एक भारी पत्थर लुढ़कता हुआ ऊपर से हमारे सिर पर गिरा और अपने साथ हम दोनों को भी लेता हुआ बड़ी तेजी से भूमि पर आ रहा। इसे कहते हैं महाशय जी—भाग्य का चक्कर अथवा दुर्भाग्य का चमत्कार! भारी पत्थर के आघात से हमारा सिर उस समय बड़ी तेजी से घूम रहा था। दूसरे क्षण ही हम दोनों अचेत हो गये थे।

१२

नृत्य-कला का प्रदर्शन

"हरेन्द्र ! हरेन्द्र !! कहां से बोल रहे हो, भाई ? जरा सामने तो आओ !"

"मैं यहां पड़ा हूं, दादा !" मेरी बात सुन कर उसने कुछ विलम्ब से उत्तर दिया। जान पड़ता था जैसे वह असह्य वेदना से पीड़ित होकर अपनी व्याकुलता को छिपाने की चेष्टा कर रहा हो। अनेक क्षण चुप रहने के बाद वह पुनः बोला,—"किसी चीज की जरूरत है क्या ?"

यद्यपि प्यास के मारे कण्ठ सूखा जा रहा था; और पानी मंगाने के लिये ही मैंने उसे पुकारा भी था, किंतु भर्राया हुआ कंठ-स्वर सुन कर फिर उसे कष्ट देने का मुझे साहस न हुआ। वह इतना व्याकुल क्यों था आखिर—यही बात मैं सोचने लगा।

अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर उसने मुझे फिर टोका, और इस बार अपने स्वर को थोड़ा ऊंचा करके स्पष्ट शब्दों मे बोला,—

"वीरेन दादा ! वीरेन दादा !! चुप क्यों हो गये ? कुछ मंगाना चाहते थे ना—बोलते क्यों नहीं, दादा ? माथे की पीड़ा कैसी है ?"

उसके आग्रह को इस बार मैं टाल न सका। सूखे होठों पर जीभ फेर कर मैंने कहा,—"माथे की पीड़ा तो अभी जैसी की तैसी ही है. भाई ! बढ़ी तो नहीं पर साथ ही कम भी नहीं हुई जब से, शायद थोड़ी देर में कुछ मालूम पड़े। तुम्हारा क्या हाल है, हरेन्द्र ?"

"कनपटी के ऊपर बहुत जलन हो रही है अभी तक !" उत्तर देते हुए उसने कहा,—ठीक हो जायगा। आप को कुछ चाहिये था ना ?"

"हां, थोड़ा पानी पीने की इच्छा थी। प्यास के मारे गला बिल्कुल सूख गया है—देखो, कुछ हो सके तो बहुत अच्छा हो।"

यहां पास में तो कोई जलाशय नजर आता नहीं है—हां, उस ओर पहाड़ी के दूसरी तरफ जहां बहुत से पंछी उड़ते दिखाई दे रहे हैं—मालूम होता है. वहां अवश्य ही कोई जलाशय होगा। पर आपको यहां अकेला छोड़ कर जाने की इच्छा नहीं हो रही है।"

"चलो, मैं भी तुम्हारे साथ ही चलता हूं।" कह कर मैंने उठने का प्रयत्न किया, पर आधा उठ कर भी पुनः उसी घास पर लेट गया। ऊंचे पहाड़ की चोटी से उतरते समय, उस भारी पत्थर ने

ऊपर से गिर कर मेरा सिर बुरी तरह से जख्मी कर दिया था। चोट हरेन्द्र के भी लगी थी; किन्तु उसका केवल कनपटी से ऊपर का थोड़ा सा भाग छिल गया था, इस लिये कुछ ही क्षण अचेत रहने के बाद पुनः ठीक हो गया था। मेरे सिर पर उस पत्थर का आघात भरपूर पहुंचने के कारण अनेक क्षण रक्त-श्राव होता रहा. इसी कारण बहुत देर तक अचेतावस्था में ही मुझे वहां पड़े रहना पड़ा। हरेन्द्र ने होश में लाने के लिये अपनी और मेरी दोनों बोतलों का पानी मेरे सिर पर डालने में ही खर्च कर दिया; तब कहीं जाकर मुझे होश आया, नहीं तो और भी न जाने कितनी देर तक मुझे संज्ञाहीन अवस्था में वहां पड़े रहने के लिये बाध्य होना पड़ता। इस समय और तो सब ठीक था; किन्तु रक्त अधिक निकल जाने के कारण मुझे दुर्बलता काफी आ गई थी।

हरेन्द्र के सहारे से मैं उठ कर खड़ा तो हो गया; परन्तु पांव पर जोर पड़ते ही मुझे हठात् एक जोर का चक्कर आया और यदि उस समय हरेन्द्र मुझे थामे हुये न होता तो मैं निश्चय ही फिर उसी घास के ऊपर गिर पड़ा होता। प्यास के मारे होठों पर पपड़ी तक जम गई थी, इसी लिये जीभ फेर कर बारम्बार उन्हें तर करना पड़ता था। मेरी ऐसी दशा देख कर हरेन्द्र को बहुत दुःख हुआ; किंतु वह भी क्या करता बेचारा? वश की बात होती तो वह अबतक कभी का मुझे आराम पहुंचाने वाली जगह में पहुंचा दिये होता।

दोनों बोतलों को झाड़ कर उसने एक बोतल के ढक्कन को पानी से भर लिया और स्वयं प्यासा होने पर भी अपनी कोई पर्वाह न करके वह सारा पानी उसने मुझे ही पिला दिया। सूखे हुये कण्ठ के नीचे ठंडा पानी पहुंचते ही शरीर में मानों नई जान पड़ गई। दुर्बलता और थकावट होते हुये भी दोनों पांव मेरा साथ देने को फौरन तैयार हो गये। मेरे चेहरे पर कुछ रौनक के चिन्ह और आकस्मिक परिवर्तन देख कर हरेन्द्र ने संतोष का सांस लिया और पास की झाड़ी से हरे बांस की एक मजबूत लाठी काट कर उसने मुझे देते हुये कहा—

"लीजिये, दुर्बल मनुष्यों के लिये यह वस्तु एक सच्चे मित्र से भी बढ़ कर होती है। वृद्धावस्था में सगा बेटा भी सहारा देते-देते कभी नाक-भौं सिकोड़ने लगता है; किंतु हाथ की लाठी सदा-सर्वदा ही शुभ-चिंतक बनी रहती है।"

यह कह कर स्वभावतः मन्द-मन्द मुस्करा उठा। ऐसे समय मुझे उसका इस प्रकार मुस्कराना बहुत ही भला एवं आनन्द-दायक लगा। यूं तो प्रायः हर बात में ही मुस्कराते रहने की उसे एक आदत सी थी, और इसी लिये मैं कभी भी उस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया करता था, किन्तु उस दिन - विशेषतः उस समय उसका मुस्कराना मुझे इतना अच्छा लगा कि मैं अनेक क्षण एक टक दृष्टि से उसकी ओर देखता ही रह गया। सम-वयस्क होने पर भी वह मेरा प्रत्येक बात में यथेष्ट आदर किया करता था।

वास्तव में उस लाठी ने मेरा बड़ा उपकार किया। पहाड़ों की ऊबड़-खाबड़ भूमि पर चलने में वह मेरी ठीक एक सच्चे मित्र के समान उस समय सहायता कर रही थी। येन-केन जब कभी मेरा पांव चलते-चलते लड़खड़ा जाता अथवा किसी चिकने पत्थर के ऊपर से कुछ रपटने-सा लगता; तब ऐसे अवसरों पर लाठी ही मुझे सहारा देती और धूलि में धराशायी होने के पहले ही सारा बोझ मेरा अपने ऊपर लेकर तुरन्त मुझे गिरने से बचा लेती थी। अत्यधिक दुर्बलता होने पर भी अब मुझे चलने में कोई कठिनाई नहीं हो रही थी।

सहसा मुझे हरेन्द्र के चेहरे पर कुछ परिवर्तन के चिन्ह दिखाई देने लगे। तब से अब तक किसी न किसी विषय पर वह बराबर मुझ से बातें करता चला आ रहा था; किन्तु अब, जब से हमने सामने वाली पहाड़ी के ऊपर चढ़ना शुरू किया था-तब से उसने कुछ चुप्पी-सी साध ली थी। ऐसा प्रतीत होता था जैसे वह किसी दूर की अज्ञात आवाज को सुनने की चेष्टा कर रहा हो। चलते-चलते कुछ चौंक-सा पड़ता और एक क्षण रुक कर बड़े ध्यान से इधर-उधर देखने लगता; निकटवर्ती स्थानों में कोई विशेष बात न देख कर वह पुनः चलने लगता; पर उसके मन का भ्रम ज्यूं का त्यूं बना ही रहता।

उसकी यह अवस्था देख कर मेरा मन भी कुछ सशंकित हो उठा। हृदय की उद्विग्नता को दबा कर मैं पूछ ही बैठा,—"क्या बात है, हरेन्द्र?"

"जान पड़ता है फिर कोई विपद हमारे सिर पर आने वाली है।" सतर्क दृष्टि से चारों ओर देखते हुये उसने उत्तर दिया।

"यह ख्याल तुम्हें कैसे पैदा हो गया ?" क्षणभर रुक कर अपनी लाठी के सहारे खड़े होते हुये मैंने पूछा,—"कोई खास बात हुई है क्या ?"

"जी, वही तो मैं मालूम करना चाहता हूं।" चढ़ाई की ओर धीरे-धीरे बढ़ते हुये बोला,—"पूरी बातों का पता तो इस पहाड़ी के ऊपर चढ़ने के बाद ही लगेगा। अभी केवल इतना ही कहा जा सकता है कि निकट ही किसी स्थान पर नागा लोग भारी तादाद में जमा हो रहे हैं।"

"आखिर ऐसी धारणा मन में बैठाने का विशेष कोई कारण तो होना ही चाहिये ?" लाठी के सहारे उसके पीछे-पीछे चलते हुये मैंने पूछा।

"आपने ग़ौर नहीं किया," वह बोला,—"यदि उस ओर ध्यान देते तो आपको ज्ञात हो जाता कि इस पहाड़ी के उस पार से एक विचित्र प्रकार की सम्मिलित आवाज हमें सुनाई दे रही है। यह आवाज अन्य किसी वस्तु की न हो कर वाद्य-यन्त्रों की ही कही जा सकती है।"

"वाद्य-यन्त्रों की ?" साश्चर्य मैंने प्रश्न किया,—"इस जंगल में भी तुम वाद्य-यन्त्रों की सुरीली ध्वनि सुनने की कल्पना कर रहे

हो, हरेन्द्र ? ऐसे भयानक जंगल में, जहाँ असभ्य जातियों की हिंसा-वृत्ति नित्य नये रूप में नृत्य करती दिखाई देती है—भला वाद्य-यंत्रों जैसे हृदय को आनन्द पहुंचाने वाले साधनों का क्या काम ? अवश्य ही तुम्हें इस समय कुछ भ्रम हो गया जान पड़ता है !"

"मेरे कान यदि मुझे धोखा नहीं दे रहे हैं, तो मैं सच कहता हूं इस पहाड़ के दूसरी तरफ नागा लोग जरूर आज कोई बहुत बड़ा उत्सव मना रहे हैं।" बड़ी गंभीरता से उसने मेरी बात का उत्तर देते हुये कहा,—"माथे के ऊपर भीषण आघात पहुंचने के कारण आपकी श्रवण-शक्ति कुछ मंद पड़ गई है। यदि आप कुछ गौर से सुनने की चेष्टा करेंगे तो आपको मालूम हो जायगा कि मेरी बातें सर्वथा निर्मूल अथवा भ्रमपूर्ण नहीं हैं। वाद्य-ध्वनि क्रमशः बढती ही जा रही है !"

"यदि यह सत्य है तो हमें तुरंत ही अब सावधान हो जाना चाहिये." निकट-भविष्य में आने वाले संकट से बचने के लिये मैंने उससे कहा—"इस बार की सम्पूर्ण यात्रा ही हमारे लिये अशुभ तथा दुःखपूर्ण रही। कैम्प से निकलते ही आंधी-तूफान एक अभिशाप बन कर शुरू से ही हमारे मार्ग में रोड़े अटकाने लगा था। एक विपद से तो अभी मुक्त नहीं हो पाये थे कि दूसरी हमारे सिर पर आने को तैयार है। वाह रे भाग्य तेरा चक्कर !"

"आवाज़ें इस तरफ से आरही हैं।" संकेत से बताते हुये वह बोला,—"उन लोगों से बचने के लिये हमें अब विपरीत दिशा को चलना चाहिये। वह देखिये, उस ओर जो वह छोटी घाटी नजर आरही है—उसी मार्ग से हमें आगे बढ़ना ठीक होगा। इन लोगों से बच कर निकलने में ही अपना कल्याण है।"

और इसके बाद ही हमने अपने मार्ग की दिशा बदल कर दूसरी ओर चलना आरम्भ कर दिया।

पहले वाला मार्ग उस पहाड़ी के ऊपर जल्दी पहुंचने के लिये ठीक और उचित था; किन्तु हरेन्द्र के कथनानुसार उस मार्ग पर जाने से हमारे लिये बहुत खतरा था; अतएव दिशा बदल कर हम लोग अब छोटी घाटी की ओर चलने लगे थे। यह मार्ग पहले की अपेक्षा कहीं अधिक लम्बा; और इसी लिये कुछ विलम्ब का था। अपने गन्तव्य स्थान तक पहुंचने में विलम्ब भले ही हो जाये; किंतु सिर पर संकट की काली घटा तो न छाये। आने वाली विपद् को टालने के लिये ही हमने इतना घूम कर जाना स्वीकार किया था। देखें उस ओर से भी हम सुरक्षित रूप में अपने स्थान पर पहुंचते हैं या नहीं!

उस बड़ी पहाड़ी के बगल में ही वह घाटी थी; जिसमें से होकर हमें पार जाना था। यदि केवल उस घाटी को ही पार करना होता, तब शायद इतनी कठिनाई हमारे लिये न होती किन्तु घाटी के ठीक मध्य में एक झरना बड़े वेग से पहाड़ी की चोटी पर से

नीचे गिर रहा था। वेगपूर्ण पहाड़ी—निर्झर को पार करना कोई साधारण बात नहीं थी। स्फटिक शिला—खण्डों पर दूध के समान श्वेत फेन उगलता हुआ झरना एक ओर को चला गया था।

स्वच्छ-निर्मल जल से परिपूर्ण नील झरने को देख कर पहले तो हर्षातिरेक से हम दोनों ही झूम उठे; कारण, इस समय शीतल जल की हमें सख्त जरूरत थी; किन्तु दूसरे क्षण ही जब हमें यह मालूम हुआ कि उस आनन्द—दायक झरने ने घाटी के बीचोबीच गिर कर पार जाने का हमारा मार्ग ही अवरुद्ध कर दिया है—तब तो हृदय में बड़ी कसक-सी होनी लगी और वही प्रिय निर्झर आंखों में शूल की तरह खटकने लगा।

अस्तु, जैसे भी हो हमें अपना काम तो करना ही था, फिर उस निर्झर को ही हम क्यों दोष दें। सबसे पहले हरेन्द्र ने मेरी और अपनी दोनों बोतलें साफ करके ठण्डे पानी से भरलीं और ढक्कन लगा कर पीठ से बांध लीं। इसके बाद हमने अपने थैलों में स सूखे मेवे और फल निकाल कर, हाथ-पांव और मुख धोने के बाद थोड़ा-थोड़ा खाया; जो बचा उसे पुनः अपने थैलों में भर कर—खूब डाट कर पानी पिया और चलने को तैयार हो गये।

इस समय हमारी थकावट बिल्कुल दूर हो चुकी थी, सिर का दर्द भी अब कम हो गया था। अतएव हम लोगों के सामने उस घाटी को पार करने की समस्या ही अब शेष रह गई थी। निर्झर के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं

था। जैसे भी हो, उन पहाड़ों में से एक पर चढ़ कर ही हम उस घाटी के पार हो सकते थे। पहले की अपेक्षा इस पहाड़ पर वृक्ष, झाड़ियों और लताओं की कोई कमी नहीं थी।

हरेन्द्र की सहायता से मैं एक पहाड़ की चोटी तक चढ़ने में सफल तो हो गया। इस बार बड़े-बड़े वृक्षों और लताओं ने मेरा बड़ा उपकार किया। कभी वृक्षों की डाल पकड़ कर और कभी लताओं पर पूरा भार देकर - जैसे-तैसे मैं ऊपर पहुंच ही गया। यह पहाड़ी ऊपर से भी परिष्कृत नहीं थी। चारों ओर भांति-भांति के वृक्षों, जड़ी-बूटियों एवं लताओं से वह समस्त पहाड़ी आच्छादित थी। इसीलिये शायद वहां मच्छरों का प्रकोप भी अधिक था।

हम लोग इस समय जिस पहाड़ी के ऊपर खड़े थे, वह आस-पास की प्रायः सभी पहाड़ियों से ऊंची और ऊपर को सीधी खड़ी हुई थी। अपने चारों ओर दृष्टि घुमा कर हमने देखा तो मालूम हुआ हम लोग उस समय पहाड़ों की दुनियां के मध्य में खड़े हुये थे। जिधर भी दृष्टि घुमाओ—केवल पहाड़ ही पहाड़ नज़र आते थे। कोई छोटा कोई बड़ा; कोई टेढ़ा कोई सीधा दूर तक फैला चला गया। बस चारों ओर पहाड़ ही पहाड़ थे।

हम अभी चारों ओर दृष्टि घुमा-घुमा कर देख ही रहे थे कि इतने में हरेन्द्र ने चौंक कर मेरे कंधे का स्पर्श करते हुए कहा,—"अरे, दादा! देखते हो वह सामने क्या है? वह उधर—मेरी

ऊंगली की ओर देखो। वह—हां, उस बड़ी चट्टान के पीछे ही तो!"

हरेन्द्र के बताये हुये संकेत की ओर मैंने दृष्टिपात किया तो सिवाय एक बड़ी चट्टान के मुझे और कोई भी विशेष बात मालूम नहीं हुई। हां, उस चट्टान के पीछे बहुत-सी ताजी मिट्टी का ढेर अवश्य पड़ा हुआ था; जिसे देखने से ज्ञात होता था जैसे कोई भारी चट्टान टूट कर गिर पड़ी हो।

भली प्रकार देखने के बाद मैं बोला—"तुम्हारा संकेत उस मिट्टी के ढेर की तरफ ही तो है ना? वह तो कोई विचित्र बात नहीं मालूम होती!"

"वाह, साहब! यह आप कैसे कह सकते हैं?" गंभीर शब्दों में वह कहता रहा,—"उस ढेर को देखने से क्या आप यह नहीं कह सकते कि यह वही स्थान है जहां से अय्यर और रहमान उस नरक-तुल्य गुहा से बहार निकले थे? वह लम्बी दुर्गन्धयुक्त गुहा निश्चय ही इन पर्वतमालाओं की जड़ों में फैली हुई है। यदि मिट्टी के उस भारी ढेर को हटा दिया जाये तो उसके नीचे निस्सन्देह आपको वही छिद्र मिलेगा, जिसके द्वारा वे दोनों बाहर निकले थे। दूसरे, इस झरने को देख कर भी मेरी बातों की पुष्टि हो जाती है। वह देखिये, सामने की चोटी पर से यह झरना जिस स्थान पर नीचे गिरता है, वहां काफी गहरा गड्ढा हो गया। ठीक इसके नीचे पहुंचने पर ही हमें उस गुहा के

भीतर चिकनी मिट्टी का दलदल मिला था। मैं पूर्ण विश्वास के साथ कह सकता हूं कि इनमें से अधिकांश पर्वतों की जड़ें नीचे से खोखली हो गई हैं; और यही कारण है कि एक बार किसी गुहा में प्रवेश करने के बाद फिर उसका ओर-छोर ही नहीं मिलता।"

यद्यपि उसकी बातें अधिकांश सत्य ही थीं; किंतु इस समय मेरा ध्यान उस ओर कतई नहीं था। किसी अज्ञात प्रेरणा से बाध्य होकर मैं उस समय पहाड़ी के नीचे एक सघन वन में अपनी दृष्टि जमाये हुये देख रहा था। वहां का दृश्य कुछ ऐसा लोमहर्षक एवं अद्भुत रोमांचकारी था कि मैं इच्छा करने पर भी अपनी दृष्टि वहां से नहीं हटा सकता था। हरेन्द्र ने बरबस मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा; किंतु सफल न हो सका। अन्त में हार कर वह भी उसी ओर देखने लगा। पर दृष्टि स्थिर होते ही हठात् उसके मुख से निकल गया—"ओह, नृत्य-कला का कैसा सुन्दर प्रदर्शन है।"

१२
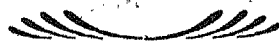
अतिथि बने या आहार

"उफ-ओ-हो ! क्या गजब की सफाई है, वीरेन दादा ! ऐसा नाच क्या पहले भी कभी देखा है आपने ?"

"देखा तो नहीं, पर पढ़ा जरूर था एक बार 'इलस्ट्रेटेड वीकली आव इण्डिया' में ।" उत्तर देते हुए मैंने कहा,—"इन लोगों के नाचने का ढंग ही सबसे अनोखा होता है । प्राय: शस्त्रास्त्रों को उछाल-उछाल कर और कभी मुख में पकड़ कर ये लोग नाचते हैं !"

"वह देखिये ना, कैसा भयानक ढंग है इन लोगों के नाचने का,"—हाथ के संकेत से वह दिखाते हुये बोला,—"नाचने वाली प्राय: सभी जवान लड़किएं ही हैं, किन्तु वस्त्र पहिनने का ढंग बिल्कुल विचित्र-सा है । कमर से घुटने तक केवल मृगछाला का एक-एक छोटा टुकड़ा प्रत्येक लड़की ने लपेट रक्खा है । नीचे से वह मृगछाला कैसी सुन्दर झालर की तरह कटी हुई है । वक्ष-स्थल

पर एक अन्य ही पशु की खाल कैसे साधारण ढंग से लपेटी हुई है। लापर्वाही के कारण, किसी-किसी लड़की का वस्त्र नाचते समय बिल्कुल नग्न ही हो जाता है। शायद इस जाति में शरीर को ढांक कर रखने की प्रथा अधिक प्रचलित नहीं है। इसी लिये उस ओर किसी का ध्यान ही नहीं जाता।"

"नग्न रहने के कारण ही तो ये लोग नागा कहे जाते हैं।" मैंने समझाते हुए उससे कहा,—"देखते हो, स्त्री-पुरुषों के शरीर का अधिक भाग प्रायः नग्न ही तो है-केवल गुप्तेन्द्रियों को ढांकने के लिये ही किसी-किसी ने मृगछाल अथवा बाघम्बर लपेट लिया है।"

"वह भी केवल खास-खास व्यक्तियों ने ही," हरेन्द्र मेरी बात का समर्थन करते हुये बोला,—"शायद वे लोग इस जाति के मुख्य व्यक्तियों में से हैं। साधारण लोग एक दम नग्नावस्था में ही रहते होंगे, जैसा कि वह सामने देखने से पता चल रहा है।"

"ओहो, कितने बड़े-बड़े तेज धार के छुरे और लम्बे लम्बे बर्छों को ऊपर उछाल कर वे लड़कियें अपने होठों पर थाम लेती हैं।" संकेत द्वारा उसे दिखाता हुआ मैं बोला,—"वह देखो हरेन्द्र, उस छोटी लड़की ने कितनी फुर्ती से उछल कर सामने से आता हुआ तीर एकदम बेकार कर दिया।"

"पर यह लोग आज इतनी भारी तादाद में यहां जमा क्यों हुये हैं?" कौतूहलपूर्ण दृष्टि से उस ओर देखते हुये उसने प्रश्न

किया,—"जान पड़ता है समस्त नागा जाति के स्त्री-पुरुष, आबाल-वृद्ध आज वहां आकर जमा हो गये हैं। हजारों की तादाद में तो होंगे ही वे लोग, क्यों दादा ?"

"हां, इसमें क्या सन्देह है।" उत्तर देते हुये मैंने कहा,—आज अवश्य ही उन लोगों का कोई धार्मिक त्योहार होगा—बहुत संभव है किसी देवी-देवता का पूजन करके वे लोग बलि देने का आयोजन भी करें। इसी लिये गा-बजा और नाच कर वे लोग पहले अपने आराध्य देव को जगाने की चेष्टा कर रहे हैं; बाद में भेंट चढ़ाने वाली वस्तु को—चाहे वह कोई पशु हो अथवा मनुष्य, यहां लाकर उसका बध कर देंगे।"

"हैं, हैं, यह क्या हुआ ?" सहसा भय और विस्मय से चौंक कर हरेन्द्र कुछ पीछे हटता हुआ बोला,—"वह देखिये, वह दो नागा जो अभी उस बगल वाली पहाड़ी के ऊपर से उतर कर उन लोगों के पास पहुंचे थे—उनसे बातें करने के बाद ही उनमें कुछ खलबली-सी मच गई है। कुछ इधर भाग रहे हैं और कुछ उधर ! ऐसा जान पड़ता है जैसे उन दोनों के मुख से कोई नई बात सुन कर वे लोग हठात् ही घबरा उठे हों।"

"अच्छा, अब हम लोगों को भी तुरंत यहां से चल देना चाहिये, हरेन्द्र !" आने वाले संकट को टालने के अभिप्राय से, सोचने के बाद मैंने उससे कहा।

"किंतु जायंगे हम किधर से होकर ?" वहां की स्थिति का

अन्दाजा लेकर वह बोला,—"देखिये, इस पहाड़ी के पीछे ही वह घाटी है जहां हम लोगों का जहाज टूटा पड़ा है। अतः हम लोगों को इसी ओर से जाना ठीक होगा; किंतु आप देख ही रहे हैं कि इस ओर से जाने में हमारे सामने भारी खतरा आने की संभावना है। खतरे से डर कर यदि हम दूसरे मार्ग से जाने की चेष्टा करते हैं तो फासला और भी अधिक हो जाता है। ऐसी दशा में इसी ओर········"

"पड़ जाओ, फौरन नीचे पड़ जाओ हरेन्द्र !" सहसा खींच कर मैंने उसे नीचे दबाने के लिये बाध्य कर दिया; और उसके साथ ही मैं स्वयं भी बड़ी फुर्ती से भूमि पर गिर कर नीचे लेट गया। झाड़ियों के बीच में लेटने के कारण हम लोग अब एक प्रकार से बिल्कुल अदृश्य ही हो गये थे।

मेरी बगल में लेटे-लेटे उसने विस्मय-विस्फारित नेत्रों से देखते हुए अपने स्वाभाविक स्वर में पूछा,—"क्या बात है, वीरेन दादा ?"

"अरे चुप, चुप, धीरे से बोलो !" सहसा उसके मुख पर हाथ रख कर मैंने धीरे से कहा,—"वह उस ओर, सामने वाली पहाड़ी पर चार नागा बड़े वेग से हमारी तरफ चले आ रहे हैं। यदि सचमुच ही उन लोगों ने हमें यहां खड़े हुए देख लिया होगा तो इसमें सन्देह नहीं, वे लोग बिना आक्रमण किये मानेंगे नहीं। उन लोगों को हमारे भागने की सूचना अब तक अवश्य ही मिल

गई होगी। कोई आश्चर्य नहीं वे दोनों नागा इस समय यही समाचार लायें हों; और इसी लिये उनमें हठात् एक खलबली-सी मच गई है। मेरा ख्याल है वे चारों नागा अब झरने के पास पहुंच गये होंगे।"

"ठहरिये, मैं अभी देख कर बताता हूं आपको!" कह कर वह उठने को हुआ; पर मैं ने उसे खींच कर पुनः नीचे लेटा दिया।

"अरे, क्या ग़ज़ब कर रहे हो, हरेन्द्र!" बरबस नीचे खींचते हुये मैंने उससे कहा,—"जरा भी यह झाड़ी हिल जायगी तो उन्हें संदेह होने में फिर तनिक भी विलम्ब नहीं लगेगा। जहां तक हो उनकी दृष्टि से अपने को बचाये रखने का ही प्रयत्न करो—नहीं तो......"

"ओह, मैं मरा!" कह कर हठात् वह ऊपर उछल पड़ा। मैंने तुरंत घूम कर उसकी ओर देखा तो मालूम हुआ कि एक तीर कहीं से आकर उसके लम्बे जूते में घुस गया था। यह समझने में देर नहीं लगी कि वह तीर उन चारों नागों में से अवश्य ही एक का छोड़ा हुआ था। तब, इसका मतलब यह था कि वे लोग हमें देख चुके थे—और उनके देखने का मतलब था कि या तो वे हमारा बध कर डालेंगे; और या जीवित ही पकड़ कर हमें अपने साथियों के पास ले जायंगे, जहां पहुंचने के बाद भी बलि चढ़ाने के निमित्त प्राणांत हमारा अवश्य कर दिया

जायगा। दोनों ही दशा में प्राणों की आहुति देनी पड़ती थी; किंतु हमारे प्राणों का मूल्य इतना सस्ता नहीं था, और न ही हमें इतनी जल्दी मरने की इच्छा हो रही थी।

हाथ-पांव और मुख धोने के बाद से मैं अब काफी स्वस्थ हो चुका था और किसी भी आने वाली विपद का मुकाबला करने के लिये सहर्ष तैयार था। अतएव सबसे पहले हरेन्द्र के पांव से खींच कर वह तीर मैंने अलग कर दिया और अपने शत्रुओं के पहुंचने का इन्तजार करने लगा।

तीर निकलने से हरेन्द्र को बहुत शांति मिली। अपना पांव भूमि पर टेक कर और खूब अच्छी तरह दबा कर उसने परीक्षा की तो मालूम हुआ तीर केवल जूते के तले में ही अटक गया था। मिलिटरी के मजबूत जूते का तला कोई साधारण चमड़े का बना हुआ नहीं होता,—साथ ही नागा लोगों के धनुष से निकला हुआ लोहे का तीर भी मामूली नहीं कहा जा सकता। यदि खुले मैदान में वही तीर छोड़ा गया होता तो जूते का तला छोड़ पांव का तलवा भी फोड़ डालता; किंतु हमारे चारों ओर बड़ी-बड़ी झाड़िएं होने के कारण उस तीर का वेग पहले ही कम हो गया था। इसी लिये हरेन्द्र के पांव को विशेष आघात नहीं पहुंच पाया। मानों भाग्य ने इस समय हमारे ऊपर बहुत बड़ी दया की थी; किंतु यमदूत बिल्कुल सिर पर ही आ पहुंचे थे।

अब अधिक देर तक अपने को छिपाये हुये वहां पड़े रहने से कोई लाभ नहीं था। हमारा लक्ष्य करके तीर छोड़ने का अभिप्राय

स्पष्ट था कि वे चारों नागा हमारे छिपने के पूर्व ही हम लोगों को देख चुके थे; फिर वहां पड़े-पड़े मच्छरों को अपना रक्त चूसने के लिये आमंत्रित करने से लाभ क्या? खड़े होकर एक वीर सैनिक की तरह उनके मुकाबले में डट जाना ही हमने अधिक श्रेयस्कर समझा। कायरता की मृत्यु से तो वीर बन कर लड़ते-लड़ते मर जाना ही अधिक उचित था। हरेन्द्र से परामर्श करने पर भी यही ठीक समझा गया कि जैसे भी हो सामने डट कर उनसे युद्ध करना चाहिये। ऐसा करने में यदि प्राण भी चले जायें तो भी उतना दुःख न होगा; जितना कि बिना परिश्रम किये मरते समय पछताना पड़ेगा।

हम लोगों को उठते-उठते थोड़ा विलम्ब हो ही गया; और उसका परिणाम यह निकला कि हम लोगों के संभल कर खड़े होने से पहले ही वे चारों नागा हमारे सिर पर आ धमके। ऐसी दशा में न तो हम भाग ही सकते थे और न आत्मरक्षा के लिये कोई उपाय ही कर सकते थे। काले-काले, भयानक चेहरे वाले हृष्ट-पुष्ट चारों नागा, हम लोग एकबारगी ही भय से कांप उठे। क्रोध के मारे प्रत्येक नागा की रक्तपूर्ण आंखों से मानों आग की चिनगारियां निकली पड़ती थीं। एक-एक नागा की देह का अंग-प्रत्यंग क्रूरता के भार से जैसे फूल उठा था। हम दोनों की ओर देखते ही उन लोगों की अन्तर्ज्वाला मानों और भी धधक उठी।

बिना एक क्षण का अवकाश दिये ही उन्होंने आक्रमण करना शुरू कर दिया। चार धनुषों की प्रत्यंचा एक बारगी ही झंकार

उठी; और उनमें से चार तीरों ने एक साथ निकल कर चारों ओर से हमें घेर लिया। हरेन्द्र ने उस समय गजब की फुर्ती दिखाई। तीरों के छूटने से पहले ही वह कूद कर एक बड़े वृक्ष की आड़ में हो गया। अतएव उसे कोई क्षति न पहुंच सकी; किन्तु अभाग्यवश मैं उन लपलपाते हुए तीरों की बौछार से अपनी रक्षा न कर सका। फलस्वरूप एक नागा के नोकीले तीर ने मेरे बायें हाथ की कलाई को आरपार छेद डाला; और उसी में चुभा रह गया। ओफ, भीषण वेदना से चीख कर मैं वहीं गिर पड़ा।

बांये हाथ की कलाई का जख्मी होना तथा मेरा अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ना—यह दोनों बातें ही हरेन्द्र की दृष्टि से छिपी न रह सकीं। मेरे गिरने के बाद एक क्षण भी न बीत पाया होगा, कि हठात् 'धांय-धांय'—और एक क्षण बीतने के बाद पुनः 'धांय-धांय'; इस प्रकार उसके पिस्तौल से चार बार गोलिएं छूटीं, और देखते-देखते वह सारी पहाड़ी धुयें के गुब्बार से भर उठी। निश्चय था कि वह चारों नागा इस समय भूमि पर लेटे हुए तड़फ रहे होंगे; परन्तु धुयें के आधिक्य के कारण उनमें से एक नागा की सूरत भी हमें उस समय दिखाई न दे सकी। हरेन्द्र को अपने अचूक लक्ष्य पर पूरा गर्व था अतएव वह तुरन्त निकल कर मेरे पास आ गया।

सबसे पहले उसने मेरे हाथ की कलाई से चुभे हुए तीर को निकाल कर बाहर किया; फिर तुरन्त ही अपने थैलों से 'फर्स्ट एड' का डिब्बा निकाल कर, उसमें से मल्हम पट्टी का सामान

बाहर किया। तीर के खींचते ही रक्त की मोटी धार बड़े जोर से बहनी शुरू हो गई थी; उसे उसने बड़ी शीघ्रता से पानी से धोकर साफ कर दिया, और 'फर्स्ट एड' का तुरन्त-गुणकारी मल्हम लगा कर ऊपर से पट्टी बांध दी।

रक्त-श्राव तो बन्द हो ही गया था; साथ ही कुछ क्षणों के भीतर घाव की जलन और समस्त वेदना भी दूर हो गई। उस दिन मुझे सर्व प्रथम 'तात्कालिक-चिकित्सा' का अनुभव प्राप्त हुआ। वास्तव में युद्ध के लिये 'फर्स्ट-एड' की औषधियों का आविष्कार कर के उस डाक्टर अथवा डाक्टरों ने हम सैनिकों के ऊपर बहुत ही बड़ा उपकार किया था; हमें उनका कृतज्ञ होना चाहिये।

हरेन्द्र बेचारा अभी मेरी पट्टी बांध कर ठीक से संभल भी न पाया था कि सहसा किसी ने पीछे से उसका पांव पकड़ कर इस जोर से अपनी ओर खींचा कि वह धड़ाम से पृथ्वी पर आ रहा। पांव खींचने वाला कोई और नहीं, बल्कि उन चारों में से एक नागा ही था, जो पिस्तौल की गोली खाने के बाद भी अभी तक जीवित बचा हुआ था। शायद धुंवा अधिक छा जाने के कारण निशाना चूक गया होगा।

पृथ्वी पर गिरते ही वह तुरन्त हरेन्द्र की छाती पर चढ़ बैठा और क्रोधावेग में दांतो को किटकिटाता हुआ इस बुरी तरह से गला पकड़ कर दोनों हाथों से दबाने लगा कि हरेन्द्र का श्वास

रुक गया और आंखें और जीभ बाहर निकल पड़ीं। यद्यपि उसके चंगुल से छुटकारा पाने के लिये वह काफी छटपटाया और अपने हाथ-पांव पटकता रहा; परन्तु उस हिंसक नर-पिशाच के आगे कुछ भी वश न चल सका।

अपने साथी का प्राण संकट में देख कर मैं सहन न कर सका। न जाने उस समय कहां से इतनी स्फूर्ति मेरे अन्दर आगई थी कि सहसा विद्युत-गति से उठ कर मैं खड़ा हो गया और उस नागा की पीठ में कस कर दो-तीन घूंसे भरपूर इतनी जोर से लगाये कि भीमकाय होने पर भी क्षण भर के लिये वह कुछ विचलित हो उठा और हरेन्द्र के गले पर उसके दोनों हाथों की पकड़ बहुत-कुछ ढीली पड़ गई।

यह देख कर मेरा उत्साह और भी द्विगुणित हो उठा और दूसरे क्षण पूरे वेग से एक धक्का मैंने उसकी पीठ में लगाया। हरेन्द्र की गोली से वह जख्मी तो पहले ही हो चुका था; बल्कि घाव से रक्त-प्रवाह निरन्तर होते रहने के कारण वह क्रमशः शक्तिहीन भी होता चला जा रहा था, इसी लिये शायद इस बार वह मेरे उस धक्के को संभाल नहीं सका और ढुलक कर हरेन्द्र की छाती से भूमि पर गिर पड़ा।

उसके नीचे गिरते ही मैंने तुरन्त हरेन्द्र को सहारा देकर खड़ा कर दिया और धीरे-धीरे उसकी गर्दन को सहला कर नसों का दबाव भी ठीक कर दिया। अल्प क्षणों के भीतर ही उसके कण्ठ

की दशा पूर्ववत् हो गई; किन्तु जीभ को बारम्बार होठों पर फेरते हुए देख कर मैंने महसूस किया कि दबाव अधिक पड़ने के कारण उसका कण्ठ उस समय सूख गया था। अतएव मैंने तुरन्त बोतल से पानी निकाल कर उसे पिला दिया। होठ, जीभ और कण्ठ पानी से तर होते ही वह फिर पहले की तरह स्वस्थ हो गया। इसी बीच वह नागा पुनः उठ कर हमारे ऊपर अक्रमण करने की तैयार कर रहा था। हरेन्द्र तो उसके ऊपर जला भुना था ही; अतः तुरन्त पिस्तौल संभाल कर उसे गोली से मार दिया।

चारों नागा अब पूर्णतः शान्त हो कर चिर-निद्रा में विलीन हो गये थे। उन्हें ज्यूं का त्यूं पड़े हुए छोड़ कर हम लोगों ने वहां से प्रस्थान कर दिया। अब उस जगह अधिक ठहरना हम लोगों के लिये खतरे से खाली नहीं था। झरने को पार करके हम लोग अब पहाड़ी के दूसरे किनारे पर जा पहुंचे थे। इस ओर सघन वन होने के कारण दूर से कोई नहीं देख सकता था। वैसे भी नागा लोगों का भय अब अधिकांश दूर हो चुका था। कारण, उत्सव मनाने वाले वे सब नागा इस समय बड़ी तेजी से एक अन्य घाटी की ओर बढ़े चले जारहे थे। गौर से देखने पर हमें मालूम हुआ कि गज-कपाल की चोटी उसी घाटी के ऊपर थी। वे सब इस समय वहीं पहुंचने को उत्सुक थे।

नागा लोगों का भय दूर होते ही हमने पूर्ण सन्तोष की सांस ली। इस घाटी को पार करने के बाद ही उस सामने वाली पहाड़ी पर हम लोगों का जहाज़ था-जो कि रहमान और अय्यर के पहुंच

जाने के कारण अब तक बिल्कुल ठीक और उड़ने के योग्य हो गया होगा। बस पहुंचने भर की देर थी कि हम लोग बैठ कर तुरन्त आकाश में उड़ना शुरू कर देंगे. फिर किसी की शक्ति नहीं जो हमें छू भी सके।

ऐसी ही अनेक बातों को सोचते और खुश होते हुए हम लोग बढ़े चले जा रहे थे कि अकस्मात दो सुन्दर नवयुवतियों ने कहीं से आकर हमारा मार्ग रोक लिया और आग्रहपूर्वक अपने साथ ले चलने को वे दोनों हमें बाध्य करने लगीं। सहसा ऐसी स्थिति पैदा हो गई कि हमें उनके साथ जाना ही पड़ा, परन्तु हम यह उस समय न जान सके कि इनके अतिथि बन कर हम जा रहे हैं या आहार बन कर !

१४

बनदेवी की शरण में

वह स्थान ही, सच पूछो तो कुछ इतना सुन्दर एवं मनमोहक था कि एक मुर्झाए हुए हृदय में भी विचित्र उत्साह का संचार होने लगता था। एक ओर ऊंची पहाड़ी के ऊपर से उतर कर चंचल जल-प्रपात कोलाहल करता हुआ उस सघन वन की बगल से एक ओर चला गया था। बड़े-बड़े वृक्षों, झाड़ियों और लम्बी-लम्बी कोमल घास के भीतर से शीतल-स्वच्छ जल का वह प्रपात ठीक एक नव-वधु के समान लज्जा से अपना उज्जवल मुख छिपाता हुआ, काले विषधर की तरह बल खाता-इठलाता-सा न जाने किधर अपने गन्तव्य-स्थान की ओर चला गया था। साल, शीशम, जामुन, मालझन, देवदारु, हर्र, बहेड़ा, आमला आदि नाना प्रकार के वृक्ष उस सघन बन में खड़े हुये लहलहा रहे थे। ऊंचे-ऊंचे वृक्षों के अतिरिक्त भांति-भांति की लताओं ने यत्र-तत्र

फैल कर वहां की सघनता को और भी बढ़ा दिया था। अधिकांश लताएं परस्पर इस प्रकार मिल गई थीं; जैसे चिर-काल से बिछुड़ी हुई सखियां प्रिय-मिलन के समय एक-दूसरे के आलिङ्गन-पाश में आबद्ध हो कर एक हो जाती हैं। उन्हें पृथक करना अथवा उनके मध्य से होकर दूसरी ओर जाना कोई सरल काम नहीं था।

बनबेलि-वेष्ठित, नन्दन-निन्दित-निकुंज की वह मनोहर सघनता ऐसी चित्ताकर्षक थी कि दूर होने पर भी मन बरबस उसी ओर खींचा जाता था। हरेन्द्र मेरे कंधे का सहारा लिये धीरे-धीरे आगे बढ़ रहा था। उस दुष्ट नागा ने अकस्मात आक्रमण करके बहुत बुरी तरह से उसे परेशान कर दिया था; गले की वेदना अभी भी उसकी दूर नहीं हुई थी। सांघातिक आघात पहुंचने पर भी यहां की उत्साहवर्द्धक जलवायु का स्पर्श उसके लिये प्राणदायक सिद्ध हुआ। वन्य पुष्पों की मधुर सुगन्ध से भरा हुआ पवन का शीतल–मंद झोंका हृदय में एक गुदगुदी-सी मचा देता और इसके साथ ही हरेन्द्र का मुर्झाया हुआ चेहरा आनन्द से खिल उठता। समस्त दुःख, सारी वेदना मानों वायु के उस झोंके में ही घुल कर पूरे वायु-मण्डल में फैल जाती। पवन का एक हल्के से हल्का झोंका भी यदि कभी पारिजात पुष्पों के उन रूपहले कोमल गुच्छों से टकरा जाता तो डालियों से गिर कर पड़ापड़ वहां की भूमि पर ढेर लग जाता। टूट कर गिरते हुये उन सद्य-स्फुटित पुष्पों का ढेर इतना सुन्दर लगता कि जी

चाहता यूं ही खड़े-खड़े उनका तमाशा देखते रहें, कहीं जाने का नाम भी न लें।

वे दोनों युवतियां इस समय भी हमारे साथ ही थीं। पथ-प्रदर्शक बनी हुई वह दोनों हमारे आगे-आगे चल रही थीं। वह कौन थीं, कहा से आई थीं इत्यादि एक बात का भी ज्ञान हमें नहीं था। अकस्मात कहीं से आकर मार्ग में हमें मिल गई और आदेश के ढंग पर केवल संकेत द्वारा ही अपने साथ-साथ चलने को हमें मजबूर कर दिया। मन ही मन हमें अब आश्चर्य हो रहा था कि आखिर किस आकर्षण-शक्ति के वशीभूत होकर हमें अज्ञात रूप से उनका अनुसरण करना पड़ रहा था। मिलिटरी के हम वीर सैनिक होने पर भी क्यों भला उनकी आज्ञाएं मानने को प्रस्तुत हो गये? बड़ी विकट समस्या थी--एक विचित्र उलझन अनायास ही हमारे सामने आ खड़ी हुई थी। क्या विशेष कारण हो सकता था इसका? सिवाये इसके कि हम लोगों पर उनका सौन्दर्य जादू की तरह अपना प्रभाव जमा चुका था। नवयुवकों के पिपासायुक्त विशाल हृदयों में नवयुवतियों के प्रति आदर-सम्मान का भाव विद्यमान रहना क्या स्वाभाविक नहीं कहा जा सकता?

वैराग्य ग्रहण करने वाले महानुभावों की तो बात ही और है; किन्तु मेरे विचार से—विचार से ही क्यों, बल्कि सम्पूर्ण विश्वास से मैं यह कहने का साहस कर सकता हूं कि हमारे स्थान पर पाठकों में से कोई और मनचला नवयुवक—भले ही वह अपने आपको

कितना ही आत्म-संयमी क्यों न समझता हो, यदि उस समय वहां होता, तो इसमें सन्देह नहीं कि उसकी भी वही दशा हुए बिना कदापि न रहती जो उस समय हमारी हो रही थी। यह आयु ही ऐसी है, महाशय जी! क्षमा कीजिएगा मेरी इस स्पष्ट-वादिता को। किसी भी नवयौवना को देख कर क्या आपकी भावनाएं सहसा कोमल नहीं हो उठती हैं? और फिर ऐसी दशा में, जबकि नवयौवन के साथ ही साथ सुन्दरता अङ्ग-प्रतियंग से फूटी पड़ती हो। प्रकृति-देवी का सुसज्जित सुन्दर, मनोरम, सघन उपवन—अहा, ऐसे रमणीक एकांत-हरिताङ्गण में कोमलाङ्गी जादूगरनियों को देख कर भी कौन पाषाण हृदय ऐसा होगा जो निष्ठुरता का व्यवहार करने की धृष्टता कर सके?

उनमें से एक नवयुवती, को जिसे मैं—हां केवल मैं, सर्वाङ्ग सुन्दरी कहने की धृष्टता कर सकता हूं, देख कर मुझे ऐसा भान होता था जैसे कभी पहले भी मैंने उसे कहीं देखा था। कहां और किस दशा में? यह मुझे उस समय कुछ स्मरण नहीं हो पाता था। स्मृति-पट पर एक धुंधली-अस्पष्ट-सी छाया मात्र ही कभी-कभी झलक जाती थी। बारम्बर उसके मुख की ओर देख कर मैं याद करने की चेष्टा कर रहा था, पर अपनी इच्छा में सफल ही नहीं हो पाता था। उसी सर्वाङ्ग सुन्दरी के प्रभाव से प्रेरित हो कर हम लोग निरुद्देश्य भावसे उनके पीछे-पीछे चल पड़े थे। चले तो जारहे थे; किंतु हमें ज्ञात ही नहीं था कि अभी और कितनी दूर हमें उनके पद-चिन्हों का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ना पड़ेगा।

नागा जाति की कन्याओं में और इस सौन्दर्य की प्रतिमा में आकाश-पाताल का अन्तर था। वे लोग वस्त्रों की अपेक्षा केवल मृगछाला अथवा बाघम्बर का एक छोटा टुकड़ा ही शरीर पर लपेट लेती थीं; जब कि इस युवती के शरीर पर एक हल्के जोगिया रंग की रेशमी साड़ी हवा में लहरा रही थी। नागा जाति की बालाओं के चक्षु छोटे-छोटे, नाक चपटी-सी तथा चेहरा भी कुछ फैला हुआ और बैठा-सा था; परन्तु इस सुन्दरी के विशाल नेत्र ठीक एक हरिणी के समान, नाक खुली हुई तथा मुखमण्डल की बनावट भी गोल और भरी हुई-सी थी। गोल भरी हुई गुलाबी बाहों में कंधों के ठीक नीचे ब्लाऊज की आस्तीनें चिपकी हुईं बड़ी भली मालूम होती थीं। काले-चमकीले केशों की लटें कटि के नीचे तक पीठ पर लहरा रही थीं।

जब तक पूरा परिचय प्राप्त न हो, तब तक उसे मैं बनदेवी के नाम से ही पुकारूंगा। बनदेवी के साथ वाली दूसरी बाला जो देखने में एक सुन्दरी ही लगती थी, कुछ नाटी और हृष्ट-पुष्ट शरीर की मजबूत लड़की दिखाई देती थी। उसके शरीर पर जो वस्त्र थे, वह भी कुछ अस्वाभाविक ही प्रतीत होते थे। ऐसा ज्ञात होता था, जैसे किसी जंगली लड़की को पकड़ कर जबर्दस्ती ही उसे एक साड़ी पहना दी गई हो। आगे से झुकी हुई और पीछे से पांव की पिन्डुली तक उठी हुई—बिल्कुल ऊल-जलूल लापरवाही से वह साढ़ी पहिनी हुई थी। स्पष्ट जान पड़ता था;

जैसे जंगल से किसी नागा लड़की को पकड़ कर बनदेवी ने अपने वस्त्र उसे पहना दिये थे। दोनों की भाषाओं में भी अन्तर था। बनदेवी स्वयं साफ हिंदी बोल सकती थी; किंतु दूसरी युवती शायद इसे समझ भी नहीं सकती थी।

बहुत दूर तक हम लोगों ने परस्पर एक शब्द भी अपने मुख से नहीं निकाला। आगे-पीछे मूक भाव से केवल चलते ही रहे। यहां तक कि वह जंगल भी प्रायः समाप्त हो चला; किन्तु वह झरना इस समय भी बराबर हमारे साथ-साथ चल रहा था। बन की सघनता के कारण ही नागा लोगों की क्रूर दृष्टि अभी तक हमारे ऊपर नहीं पड़ सकी थी। परन्तु अब ज्यूं-ज्यूं वह घना जंगल समाप्त होता जा रहा था, त्यूं-त्यूं उन भयानक हिंसक नर-पिशाचों का भय भी हम लोगों के लिये क्रमशः बढ़ता चला जारहा था। एक स्थान पर बहुत-सी हड्डियों का ढेर लगा हुआ देख कर हम लोग सहसा ठिठक गये। पर उस बनदेवी के चेहरे पर वह सब देख कर भी लेशमात्र भय के चिन्ह प्रकट नहीं हुए; बल्कि उस ढेर से बच कर दूसरी ओर निकल गई और हमें भी अपने पीछे आने को संकेत करके पुनः चलने लगी।

एक अन्य छोटी पहाड़ी पर चढ़ने के बाद निर्झर के किनारे वह ठहर गई और हम लोगों की ओर देख कर एक सन्तोष की सांस खींचती हुई बोली,—"खूब चले। शायद आप लोग

थक भी गये होंगे। पहले हाथ-मुख धोकर थोड़ा विश्राम करलें; तब फिर यात्रा आरंभ करेंगे।"

हम तो याज्ञा-पालक थे। उसकी प्रत्येक आज्ञाओं का पालन करते-करते यहां तक पहुंचे थे; सो अब इस नई आज्ञा को सुन कर हमने तुरन्त अपने भारी जूतों और मोजों को खोल डाला और उस निर्झर के शीतल जल में एक बार फिर हाथ-मुख और पांव धोकर स्वस्थ हो गये। बनदेवी ने भी दूसरी युवती के साथ-साथ अपने हाथ-मुख और पांव धोकर इतनी दूर चलने की थकावट दूर की और हमारी ओर देख कर बोली,—"सैनिकों की पीठ पर लगे हुए थैले प्रायः भरे हुए ही होते हैं। यदि मेरा ख्याल गलत नहीं तो इन दोनों में निश्चय ही खाने योग्य वस्तुएं भरी होंगी; जो कि इस समय हमारा बड़ा उपकार कर सकती हैं। शायद आप लोग मेरा मतलब अवश्य समझ गये होंगे ?"

एक मधुर हास्य-रेखा इस समय बनदेवी के रक्तिम अधरों पर नृत्य कर रही थी। हमारी पार्टी का हास्यरस का नायक—हरेन्द्र जो बहुत देर से चुप था-अब अधिक चुप न रह सका। मुस्कराता हुआ तुरन्त बोल उठा, "जी, वैसे तो आपका ख्याल सोलहों आने एक प्रकार से ठीक है—कारण, हम लोग चलने से पहले अपने थैलों में कुछ न कुछ भर ही लेते हैं। परंतु यदि हमें यह मालूम होता कि यहां आपके मेहमान बनने के बाद भी हमें अपने ही थैले खाली करने पड़ेंगे, तो और भी कुछ विशेष रूप से इसका प्रबंध करके यहां आते।"

"मेहमान मेरे नहीं, बल्कि इनके या इनकी जाति वालों के ही हैं आप लोग!" अपने साथ वाली दूसरी युवती की ओर संकेत करके उसी क्षण उत्तर दिया,—"किन्तु इस जाति से किसी प्रकार की सहानुभूति प्राप्त होने की आशा करना मानों पहाड़ से टक्कर मारने के बराबर ही है।"

"तो क्या आप भी हम लोगों की तरह अकस्मात ही यहां आकर फंस गई हैं? "वर्द्धित उत्सुकता से प्रेरित होकर मैंने प्रश्न किया।

"हां. कुछ ऐसा ही है।" विरक्ति के भाव से उत्तर देकर वह बोली,—"ओह, यह सब बातें बाद में भी हो सकेंगी; पहले आप कुछ खाने का प्रबन्ध कीजिये। भूख के मारे बहुत बुरा हाल हो रहा है। मैं नहीं जानती थी कि अनायास ऐसी विपद में फंस जाऊंगी।"

और इसके बाद ही बनदेवी, पत्थर पर रखे हुए हमारे थैलों को आकर स्वयं ही खोलने लगी। किशमिश, बादाम और खुर्मानी इत्यादि सूखे फल और बिस्कुट इस समय भी काफी मात्रा में हमारे पास थे। दोनों थैले खोलने की जरूरत ही न पड़ी—केवल हरेंद्र के थैले से ही कुछ फल निकाल कर उसने दूसरी युवती को दिये और स्वयं भी कुछ लेकर खाने लगी।

"आह, भई वा, यह जबर्दस्ती तो हमने पहली बार ही देखी है!" बनदेवी की ओर कटाक्ष करके हरेन्द्र मुस्करा उठा और पुनः मेरी ओर घूम कर बोला,—"सैनिकों का सरकारी माल

'सिविल्यन' (नागरिक) खाये और हमें पूछे भी नहीं, क्या यह बात......?"

कहीं उसकी बातों से बनदेवी को मानसिक कष्ट न पहुंचे अथवा वह रुष्ट न हो जाय, इस ख्याल से मैं बीच ही में बोल उठा,—"ऐसा क्यों कहते हो, हरेन्द्र ? एक सैनिक अथवा नागरिक में कोई अन्तर नहीं। नागरिकों के धन और अन्न से ही हम सैनिक लोगों का भरण-पोषण होता है। यदि वे लोग हमें धन-धान्य की सहायता देना बिल्कुल बंद करदें तो हम लोग भूखे ही मर जायें।"

मेरी बातों से बनदेवी की आंखें चमक उठीं और कृतज्ञ दृष्टि से एक बार मेरी ओर देख कर पुनः बादाम तोड़ने में लग गई। किंतु शायद हरेन्द्र को सन्तोष नहीं हुआ था; इसी लिये मेरी बात का खण्डन करते हुये वह बोला,—"क्षमा कीजिये, धन-धान्य की सहायता देकर वे हमारे ऊपर कोई उपकार नहीं करते—बदले में हम लोग नागरिकों की रक्षा भी तो करते हैं!"

बात अक्षरशः ठीक थी; किंतु फिर भी मैंने बनदेवी को प्रसन्न करने के अभिप्राय से हरेन्द्र की ओर देखते हुये कहा,—"यह सत्य है कि हम लोग नागरिकों की रक्षा के लिये ही अपने प्राणों की आहुति चढ़ा देते हैं; किंतु उसके उपलक्ष में हमें मान, प्रतिष्ठा और धन भी तो प्राप्त होता है। यह तो हुआ बदले का बदला; इसमें न तो कोई किसी पर उपकार करता है और न ही किसी के लिये व्यर्थ कोई जान देता है।"

"मैं देख रही हूं यह मामला उत्तरोत्तर बढ़ता ही जा रहा है !" बनदेवी ने हम दोनों को लक्ष्य करके कहा,—"देखिये, अभी हमें बहुत कुछ करना शेष है। इन जरा-जरा सी बातों में उलझे रहने से काम नहीं चलेगा। आप लोगों को मालूम होना चाहिये कि खतरा अभी भी..........."

"यहां के खतरों से क्या आप भी डरतीं हैं ?" हठात् बीच में ही बाधा देकर हरेन्द्र पूछ बैठा। उसे बनदेवी की बातों पर आश्चर्य हो रहा था।

"हां, यहां का खतरा मेरे लिये भी वैसा ही जैसा कि आपलोगों के लिये !" हरेन्द्र की जिज्ञासा शान्त करते हुए बनदेवी ने उत्तर दिया, "यह सुन कर आप लोग मेरा परिचय प्राप्त करने को अत्यधिक उत्सुक हो उठे होंगे, और है भी यह स्वाभाविक ही ! किन्तु इसके पूर्व कि मैं आप लोगों को अपने विषय में पूरी बातों से अवगत करूं, यह बता देना अत्यावश्यक समझती हूं कि मैं अनायास ही इस भयानक बन में आकर फंस गई हूं। मेरे साथ दो-तीन पुरुष और भी थे; जो यद्यपि आये तो थे मेरी रक्षा करने किन्तु यहां पहुंच कर मुझे उल्टा उन्हीं लोगों की रक्षा करने के लिये बाध्य होना पड़ा। पर मैं ही क्या, कोई भी उस समय उनकी रक्षा नहीं कर सकता था। वे लोग इस समय तक निश्चय ही नागा लोगों की हिंसक मनोवृत्ति का शिकार बन चुके होंगे। अब से चार घन्टा पहले तक हम लोग सब साथ ही थे; किन्तु इसके

बाद ही सहसा हम लोग एक दूसरे से अलग कर लिये गये। आपने उस पहाड़ी पर खड़े होकर देखा होगा कि नीचे की घाटी में असंख्य नागा लोग जमा हो रहे थे। वहाँ एक देवी का प्राचीन मन्दिर है। आगामी उसी देवी को सन्तुष्ट करने के लिये वे लोग पुरुषों की बलि चढ़ाते हैं। आज एक साथ ही सात पुरुषों की बलि चढ़ाने का आयोजन था, इसी लिये इतनी धूम-धाम से वे लोग उत्सव मना रहे थे; किन्तु अकस्मात दो तीन नागाओं ने कहीं से आकर कोई समाचार ऐसा सुनाया, जिससे उनमें एक खलबली-सी मच गई और प्राय: सभी नागा एक ओर को भागने लगे।"

"ठीक है। यह सब बातें हम पहाड़ी के ऊपर से ही देख चुके हैं।" हरेन्द्र ने बनदेवी को विश्राम देने के अभिप्राय से कहा,—"तीन मनुष्य तो आपके साथ थे ही और चार थे हम लोग—सभी कुल मिला कर सात मनुष्यों की वे लोग बलि देना चाहते थे; किंतु हम लोग तो उनके चंगुल से पहले ही निकल भागे थे, इसी लिये अपने साथियों से यह समाचार पाते ही उनमें खलबली मच गई और वे सब उसी ओर को भागने लगे थे।"

"हां, यह बात मुझे इस नागा लड़की ने रास्ते में आते समय बताई थी।" बनदेवी ने उसका समर्थन करके कहना शुरू किया,—"इसी की सहायता से मैं अपनी रक्षा भी कर सकी हूं; नहीं तो वे लोग अब तक मुझे मार भी डालते। अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषणों के लोभ ने ही इसे अपनी जाति के साथ विश्वासघात

करने को बाध्य कर दिया। यहां के जंगली वातावरण से ऊब कर यह अब मेरे साथ ही भाग जाना चाहती है।"

मैंने देखा हरेन्द्र उस समय सतृष्ण दृष्टि से उस नागा-युवती की ओर देख रहा था। कोहनी मार कर उसे सावधान करते हुये मैंने बनदेवी की ओर घूम कर पूछा,—"यदि कहें तो आपके तीनों साथियों को भी उनके चंगुल से छुड़ाने की हम लोग कुछ चेष्टा करें ?"

'ओह, ऐसी असंभव बात आप भूल कर भी न सोचिये !" बनदेवी का उत्तर सुनते न सुनते ही हमने देखा लोहे के अनेक नोकीले तीर चारों ओर से आ-आकर हमारे पास गिरने लगे, और उस बाण-वर्षा से अपनी रक्षा करना भी हमें कठिन हो उठा।

१५

प्रेम के बल पर नागा-युद्ध

हम अभी संभल भी न पाये थे कि सहसा चारों ओर से नागा लोग आकर हमारे ऊपर टूट पड़े और तीरों की बौछार से हमें परेशान कर दिया। गोली-बारूद और बमों से अपनी रक्षा करने की शिक्षा तो हमें मिलिटरी के ट्रेनिंग कैम्प में अवश्य दी गई थी; किंतु विषैले बाणों से आत्म-रक्षा करने की शिक्षा हमें आज तक किसी ने भी नहीं दी थी, तो भी परिस्थिति स्वयं सब-कुछ मनुष्य को सिखा देती है। हमें इस समय अपनी चिंता उतनी नहीं थी; जितनी कि उन दोनों नवयुवतियों की। यदि अकेले होते तो कहीं भी भाग कर अपनी जान बचा सकते थे; किन्तु वे दोनों युवतिएं कैसे इतनी जल्दी भाग सकती थीं? और यदि भाग भी सकें तो अवकाश या स्थान ही ऐसा कहां, जहां जाकर अपने को छिपा सकें।

सोचने तक का भी अवसर हमें उस समय नहीं था। और कोई तरकीब ध्यान में न आने से, तुरन्त वही मिलिटरी की नीति को ही हमें उस समय अपनाना पड़ा। बाणों की वर्षा उत्तरोत्तर बढ़ती जारही थी, अतएव मेरे मुख से शीघ्रता में यही निकल पड़ा,—"लेट जाईये, फौरन नीचे लेट जाईये!" और यह कहते ही मैंने तुरन्त बनदेवी का हाथ पकड़ कर नीचे खींच लिया। हरेन्द्र इस से पहले ही नागा-युवती को भूमि पर लेट जाने को बाध्य कर चुका था। बड़ी-बड़ी झाड़ियों ने वास्तव में हमारी बहुत रक्षा की। लम्बी-कोमल घास के ऊपर पड़े हुये हम देख रहे थे कि लोहे के तीखे बाण हमारे चारों ओर ऊची-ऊंची झाड़ियों में हमारे पास पहुंचने के पहले ही उलझ कर रह जाते और हम उनके आघात से साफ बच जाते थे।

हम लोगों को हठात् दृष्टि से ओझल होता हुआ देख कर नागा लोगों ने भी अपने स्थान से आगे बढ़ना शुरू कर दिया। यह बात हमने क्रमशः तीखे बाणों के वेग को बढ़ते हुये देख कर पता लगाया। यह समय वास्तव में हम लोगों के लिये बड़ा कठिन और कष्टदायक था। यदि सचमुच ही वे लोग हमारे पास तक पहुंच जाते तो इसमें संदेह नहीं कि हम लोगों को उस समय अपनी जान बचानी भी दूभर हो जाती; किंतु अदृष्ट में अभी मरने की अपेक्षा कष्ट झेलना ही अधिक लिखा था, इसी लिये तो ऐसी भीषण बाणों की वर्षा के होते हुये भी हमारे प्राण स्थूल-शरीरों के बीच ही अटके रह गये। यूं मानव-प्राण कोई इतना सस्ता

भी नहीं जो हाथ में आते ही जल्दी से मसल दिया जाये। इस अमूल्य प्राण को लेने में बड़े कौशल और पुरुषार्थ की जरूरत है।

तीखे बाणों के वेग को क्षण प्रतिक्षण बढ़ता हुआ देख कर हमने अपने बचाव के लिये एक बार चारों ओर दृष्टि घुमा कर देखा। इधर-उधर लम्बी–कोमल घास के अतिरिक्त और कुछ भी उस समय हमें दिखाई न दिया। यद्यपि नागा लोग क्रमशः बढ़ते हुये बिल्कुल हमारे सिर पर आ पहुंचे थे; तो भी जीवन के लोभ से हम लोगों ने घुटनों के बल बड़ी सावधानी से उस लम्बी घास के भीतर ही धीरे-धीरे खसकना आरम्भ कर दिया। बहुत-कुछ सावधानी करने पर भी घास कभी–कभी जोरों से हिल उठती थी; किंतु ऐसा होने पर भी न जाने क्यों आक्रमणकारियों के मन में हमारे छिप कर भागने का संदेह तनिक भी नहीं हुआ— शायद वे लोग यही समझते रहे होंगे कि घास उनके बाणों के वेग से टकराने के कारण ही हिल उठती होगी।

दूसरी बात एक और भी थी। नागा लोग सतर्क दृष्टि से चारों ओर देखते हुये धीरे-धीरे आगे बढ़ रहे थे। शायद उन्हें भी यह भय था कि कहीं हम लोग अकस्मात उठ कर आक्रमण न कर बैठें। यह बात निर्विवाद कही जा सकती थी कि दो स्थानों पर—एक गुफा के भीतर और दूसरा उस निर्झर के किनारे वाली पहाड़ की चोटी पर, अपने साथी नागा लोगों को मरे हुये देख कर उन लोगों के मन में हमारे लिये निश्चय ही कुछ आतंक गया होगा। तभी तो वे लोग अब एक-एक कदम अपना

फूंक-फूंक कर धरने लगे थे। सर्प, पूर्णतः विषधर होते हुये भी क्या कभी निज इच्छा से मनुष्य के ऊपर आक्रमण करने का साहस कर सकता है ? यदि बाध्य होकर करता भी होगा, तो भी चारों ओर देखभाल कर ही करता होगा।

अस्तु ! आन्तरिक भय के कारण हो अथवा किसी अन्य कारण से हो, उन लोगों की शिथिलता से हमें उस समय बड़ी सहायता मिली। घुटनों के बल खसकते-खसकते हम लोगों ने खतरे की सीमा को भी पार कर लिया और इस समय हम एक छोटी पहाड़ी के पथरीले ढालू पर पहुंच चुके थे; किन्तु खड़े होकर चलना अभी खतरे से खाली नहीं था। जब तक पहाड़ी के नीचे पहुंच कर पूर्णतया उनकी दृष्टि से ओझल न हो जायें; तब तक ऐसा करना हमारे लिये किसी प्रकार भी संम्भव नहीं था। इतनी दूर चलने के कारण हमारे घुटनों का मांस तक छिल गया था; पर क्या करें ? घुटनों के मांस की अपेक्षा तो हमें उस समय अपने प्राणों का मोह ही अधिक था, भले ही ऐसा करने में वहां की हड्डी तक घिस जाती !

पहाड़ी की सीधी ढालू पर घुटनों के बल खसकना वास्तव में एक कठिन कार्य था। यदि जरा भी कहीं असावधानी हो जाती तो सीधे लुढक कर नीचे ही पहुंचते। और फिर वैसी दशा में घुटनों का छिलना तो दूर रहा, हाथ-पांव और पसली की हड्डिएं भी चूर-चूर हो जातीं। इसी लिए मैंने बनदेवी को और हरेन्द्र ने नागा-युवती के हाथ को कस कर पकड़ रक्खा था। यद्यपि यह

कार्य, युवावस्था होने के कारण—हमारे लिये बहुत ही मर्म-स्पर्शी तथा एक प्रकार से नितान्त असह्य हो उठा था, तथापि वह परिस्थिति ही ऐसी थी जो इच्छा करने पर भी हम एक दूसरे को कदापि नहीं छोड़ सकते थे। रोमांच हो उठता हो, हृदय तीव्र वेग से स्पन्दित होने लगता हो, भले ही सारे शरीर मे सिहरन-सी होने लगती हो—पर तो भी..... हम एक दूसरे को नही छोड़ सकते थे। ऐसा करना मानों एक दूसरे के साथ विश्वासघात करने के बराबर था।

आधी पहाड़ी हम लोग निर्विघ्न रूप से उतरते चले गये, कोई भी बाधा हमारे मार्ग में उपस्थित नहीं हुई। परन्तु आधी पहाड़ी उतरने के बाद ही एक अप्रत्याशित घटना अकस्मात ऐसी हो गई; जिसने न केवल हम लोगों को आश्चर्य-चकित ही कर दिया, बल्कि आगे चलकर भविष्य में एक भारी परिवर्तन भी उसी घटना के कारण हमारे जीवन में हो गया। कालेज जीवन से लेकर अब तक अनेक बार ऐसी घटनाओं का वर्णन मैं भिन्न-भिन्न पुस्तकों में पढ़ चुका था; किन्तु हर बार केवल कपोल-कल्पित-कल्पना समझकर मैंने ऐसे लेखों की उपेक्षा ही की थी। आज स्वंय अपनी आँखों से देख कर मुझे मानना पड़ा कि कोई भी लेखक कल्पना के आधार पर ही पूरी बातें नहीं लिख डालता, बल्कि उसमें सत्यता का अंश होता ही है थोड़ा-बहुत भले ही वह कृष्णपक्ष की रात्रि में छाये हुए धुंधले प्रकाश के समान अणु मात्र ही क्यों न हो—ऐसी मेरी धारणा है।

बात यह हुई कि हम लोग सब उसी प्रकार आपस में एक दूसरे का हाथ पकड़े, घुटनों के बल खसकते, पहाड़ी ढालू पर उतरते हुए शान्ति पूर्वक चुपचाप चले जा रहे थे। मार्ग में एक स्थान पर हरेन्द्र के पांव में कोई नोकीला पत्थर चुभ जाने से हठात् वह उछल पड़ा और उसके हाथ की पकड़ क्षण भर के लिये शिथिल पड़ गई। फल स्वरुप नागा-युक्ती ने असावधनी के कारण बड़ी तेजी से नीचे की ओर लुढ़कना आरंभ कर दिया। उसे पकड़ने के लिये हरेन्द्र बड़ी फुर्ती से उसकी तरफ लपका ही था कि इतने में एक बड़ा पत्थर ऊपर से लुढ़कता हुआ आकर बड़े जोर से हरेन्द्र की पीठ पर गिरा और उसके तीव्र झटके को न सह सकने के कारण हरेन्द्र इतनी जोर से फिसला कि सीधा औंधे मुंह नागा-युवती के वक्ष पर ही जाकर रुका। प्राणों के मोह से दोनों ने एक-दूसरे को जकड़ कर पकड़ लिया और इस प्रकार वे दोनों प्राकृतिक रूप से एक-दूसरे के आलिङ्गन-पाश में आबद्ध हो गये।

निमेषमात्र में ही यह सब काण्ड होगया। किसी को किसी की सहायता करने का अवकाश ही न मिला। यदि उन दोनों की रक्षा हुई भी तो एक अप्रत्याशित—सर्वथा विचित्रि ढंग से, एक-दूसरे के बाहु-पाश में जकड़ने के बाद ही। कैसा विचित्र था वह आकस्मिक-मिलन? कितना हृदय-ग्राही था वह प्राकृतिक दृश्य? और कैसा रोमांचकारी था उन दोनों का गिरना और गिर कर पुनः संभलना? क्या यह भी कोई कपोल-कल्पित

कल्पना कहने का दुस्साहस कर सकता है? सच पूछिये तो यह हमारी आंखों के आगे का ही दृश्य था। यदि अब भी विश्वास नहीं होता तो बनदेवी के हृदय से पूछ देखिये, जिसके ऊपर इस दृश्य का सम्पूर्ण प्रभाव पड़ा था! जिसका शरीर यह दृश्य देखते ही सहसा रोमांच कर उठा था और जिसके हृदय का तीव्र स्पन्दन भली-भांति मेरे कानों में सुनाई दे रहा था। यदि ऐसा न होता तो वह क्यों मेरे हाथ को कस कर पकड़ लेती? उन दोनों की तरह यदि उसे भी गिरने का भय न होता, तो वह क्यों लपक कर अपना सिर मेरे वक्षस्थल से सटा देती? बोलिये, इतने प्रश्नों का उत्तर क्या एकमात्र वही करुण दृश्य नहीं हो सकता? निश्चय ही उसका प्रभाव हम दोनों पर भी पूर्णतया पड़ चुका था।

जैसे तैसे करके हम लोग घाटी के नीचे वाली समतल भूमि के पास तक पहुंच गये। परन्तु भूमि पर खड़ा होने में अभी भी कुछक्षणों की देर थी; कारण—पहाड़ी की ढाल पूर्णतः अभी समाप्त नहीं हो पाई थी। इतनी दूर केवल घुटनों के बल चलने के कारण प्रायः हम सभी की कमर भीषण रूप से वेदना करने लगी थी। जान पड़ता था जैसे कटि-प्रदेश से लेकर गर्दन तक का समस्त भाग एक विचित्र जलन से उड़ा जा रहा हो। इसी लिए हम लोग जल्दी से जल्दी नीचे पहुंच कर थोड़ा विश्राम करना चाहते थे। अपनी इच्छा पूर्ण करने में यद्यपि अब अधिक विलम्ब नहीं था; किन्तु सहसा नीचे से एक दबी हुई फुसफुसाहट सुन कर हमारे कान खड़े हो गए और आगे खसकना

बन्द करके ज्यों ही हमने नीचे की ओर झांका तो हमारे पांव तले की जमीन ही खिसक गई। आकस्मिक भय के कारण हमारे हाथ पांव भी शिथिल पड़ गए और हम बड़े यत्न से गिरते-गिरते बचे।

ठीक हमारे नीचे समतल भूमि पर दो भीमकाय नागा हाथों में बल्लम लिए हमारी ओर ताक रहे थे। यदि हम चार-पांच हाथ और नीचे उतर जाते तो इसमें सन्देह नहीं कि वे लोग उन बल्लमों से हमारे शरीरों को छेद कर क्षत-विक्षत ही कर डालते। अब और आगे बढ़ना हमारे लिये जानबूझ कर मृत्यु का आवाहन करने के तुल्य था। अतएव अब एकमात्र उपाय हम लोगों के लिये यही था कि पुन: उस पहाड़ी के ऊपर चढ़कर आत्मरक्षा की जाये। थकावट से बदन चूर-चूर हो चुका था; फिर भी जीवन बनाये रखने के लिये ऊपर चढ़ना नितान्त आवश्यक था। चढ़ाई का अन्दाजा लगाने के लिये एक बार हमने ऊपर दृष्टि घुमा कर देखा---ओह, गजब होगया! पहाड़ी की चोटी पर भी तो इस समय चार-पांच भयानक मुखाकृतिएं इधर-उधर हिलती हुई दिखाई दे रही थीं। इस बार हम बुरी तरह से ठगे गये थे। न नीचे उतर सकते थे, न ऊपर चढ़ सकते थे। दोनों ओर से यमदूतों ने आकर हमें घेर लिया था। कहीं से भी तो हम लोग नहीं भाग सकते थे। हे भगवान, रक्षा करो हम अनाथों की!

ऐसी संकटापन्न परिस्थिति में अपने को घिरा हुआ देखकर बनदेवी के नेत्रों में अश्रु बिन्दु झलकने लगे। कातर दृष्टि से

एक बार मेरी ओर देख कर पुनः मुख फेरते हुये रुद्ध कंठ से बोली,—"हम दोनों के कारण ही आप लोगों को पुनः इस विपद में फंसना पड़ गया, नहीं तो अब तक कभी के अपने जहाज पर पहुंच गये होते। अच्छा होगा कि आप लोग हमें इसी दशा में छोड़ कर तुरन्त यहां से भाग जायें।"

बनदेवी की बात से स्वयं मेरा कंठ भी न जाने क्यों क्षणभर के लिये अवरुद्ध हो गया और उत्तर में एक भी शब्द उस समय अपने मुख से मैं न निकाल सका। हरेन्द्र बनदेवी की बात सुन चुका था; अतएव मेरे बदले उसी ने बड़ी शीघ्रता से उत्तर दिया,—"वाह यह आप क्या कह रही हैं श्रीमती जी! आप दोनों को यहां अकेली छोड़ कर ही हम लोग भाग जायें—भला यह कैसे संभव हो सकता है? आप निःशंक और निर्भय हो कर देखती रहें कि आगे क्या होता है! शरीर में जब तक प्राण है—और प्राण में अन्तिम श्वास है, तब तक आप दोनों पर जरा भी आँच नहीं आ सकती।"

और यह कह कर उसने गर्व से छाती फुलाते हुये एकबार छिपी दृष्टि से नागा-युवती की ओर कटाक्ष किया। वह बेचारी अबोध बालिका न जाने कब, पहले ही से उस वीर सैनिक की ओर एकटक दृष्टि से ताक रही थी। हरेन्द्र की वीरोक्ति तो उसकी समझ में शायद ही आई हो—हां, उसके हाथों का मटकाना तथा शब्दों के उतार-चढ़ाव को बड़ी दिलचस्पी से देख और सुन रही थी। हरेन्द्र को छिपी दृष्टि से अपनी ओर ताकते

देख कर उसके गुलाबी गाल और भी रक्ताभ हो उठे। साथ ही हास्य की एक मधुर रेखा उसके अधरों पर थिरकने-सी लगी।

उन दोनों के हार्दिक प्रेम का वह गुप्त आकर्षण बनदेवी के साथ-साथ मुझे भी अछूता न रख सका। हम दोनों के हाथ स्वभावतः ही एक-दूसरे के हाथों में कस कर जकड़ गये और दूसरे क्षण नागा-युवती के समान, बनदेवी के गुलाबी मुखमण्डल पर भी एक लालिमा-सी छा गई। ठीक वही प्रतिक्रिया हम दोनों पर भी हुई। लाल अधरों पर छिपी हुई मधुर मुस्कान अनेक क्षण नृत्य करती रही। बनदेवी के विशाल नेत्रों में अपनी प्यासी आंखें गड़ा कर मैं बहुत देर तक उस स्वर्गीय सुधा का पान करता रहा। अहा, कैसा था वह क्षणिक आनन्द ! कितना था उस.............।

ओह, बुरा हो इन दुष्ट नागा लोगों का—जिन्हों ने जीभर उस आनन्द-सुधा का रस भी तो न लेने दिया ! कमबख्त इस बुरी तरह से हमारे पीछे पड़े हुए थे कि जरा भी कहीं विश्राम करने का अवसर नहीं आने देते थे। हमारे अतृप्त हृदय अभी पूर्णतः तृप्त भी नहीं हो पाये थे कि इतने में उन लोगों ने पहाड़ी के ऊपर चढ़ना भी आरम्भ कर दिया। अब समय प्रेम-क्रीड़ा करने का नहीं रह गया था। नीचे वाले दोनों नागा प्रतिक्षण ऊपर चढ़ते चले आरहे थे। यदि शीघ्र ही कोई उपाय न किया गया तो यह प्रेम-लीला सदा-सर्वदा के लिये शून्य में खो जायगी—इस ख्याल से मैंने तुरन्त हरेन्द्र को सावधान रहने

के लिये सचेत कर दिया और स्वयं भी आने वाली विपद का सामना करने को तैयार हो गया।

भयंकर आकृति वाले दोनों नागा लोगों को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता था कि वे लोग पहले से कहीं अधिक क्रुद्ध और मरने-मारने वाली नीति पर कटिबद्ध हो कर ही इस बार यहां आये थे। उनकी आंखों में रक्त छाया हुआ था तथा क्रोधोन्मत्त फड़कते हुये होठों से गालियों की बौछार बरसाते हुए एक-एक पग वे लोग बड़े वेग से बढ़ रहे थे। गालियों का अनुमान हमें उस नागा-युवती को देख कर ही हुआ था। उन दुष्टों को देखते ही वह भोली बालिका भय से थर-थर काँपने लगी थी और अर्द्ध-चेतनावस्था में भाग कर उसने बनदेवी की कमर जोर से पकड़ ली थी।

नागा-युवती के छूटते ही हरेन्द्र अपना कार्य करने को एकदम स्वतन्त्र हो गया। सबसे पहले दोनों नागा को ऊपर चढ़ने से रोकने के लिये उसने एक बहुत भारी पत्थर बड़े कष्ट से लुढ़का कर उनके ऊपर ढकेल दिया और खड़ा होकर उसका परिणाम देखने लगा। इस युक्ति ने हमें आशातित सफलता दिखलाई। भारी पत्थर बड़े जोर से लुढ़क कर एक नागा के सिर पर गिरा—और वह नागा उसके तीव्र झटके को हठात् न संभाल सकने के कारण बड़े वेग से अपने पीछे वाले साथी के साथ टकराया। फलस्वरूप दोनों के हाथ से बल्लम छिटक कर दूर जा

गिरे और वे दोनों बुरी तरह से लुढ़क कर पुनः समतल भूमि पर जा गिरे। भारी पत्थर ने पूरे वेग से गिर कर उनमें से एक का पांव तक भी तोड़ दिया।

हरेन्द्र ने इस अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाने की चेष्टा की। दोनों के गिरते ही वह स्वयं भी कूद कर उनके पहले वाले स्थान पर जा पहुंचा और पड़े हुये बल्लमों में से एक बल्लम उठा कर अपनी पूरी शक्ति से एक नागा की छाती में घुसेड़ दिया। बल्लम के आघात से वह नागा मर्माहात हो भूमि पर गिर पड़ा। अपने साथी की सहायता के लिये दूसरा, पाँव-टूटा हुआ लंगड़ा नागा अभी उठ कर संभल भी न पाया था कि इतने में हरेन्द्र ने उसके ऊपर भी दूसरा प्राणघातक हमला कर दिया। दोनों के हृदय उन्हीं के बल्लमों से विदीर्ण करके उसने हमारी ओर देखा। हम अब तक उसके बिल्कुल समीप पहुंच चुके थे। अतः नागा-युवती का हाथ पकड़ कर पुनः उसने आगे बढ़ना आरम्भ कर दिया।

१५

मृत्यु या मुक्ति

"अरे बापरे, बाप ! कितना बड़ा वृक्ष टूट कर यहां गिर पड़ा है—देख रहे हो ना, विरेन दादा ?" सहसा उछल कर दो पग पीछे हटते हुए उसने मेरी ओर घूम कर कहा। नागा लोगों से बच कर हम इस समय पुनः एक सघन बन के बीच में पहुंच चुके थे। खुले स्थानों की अपेक्षा सघन बन के मध्य का मार्ग हमारे लिये कहीं अधिक सुविधाजनक था। पथ-प्रदर्शक का काम इस समय नागा-युवती के जिम्मे था। उसी के संकेत से हम इस घने जंगल में प्रवेश करने का साहस भी कर सके थे; नहीं तो कौन मूर्ख भला ऐसा होगा जो जान-बूझ कर हिंसक-पशुओं से भरे हुए जंगल में घुस कर व्यर्थ अपने प्राणों को संकट में फंसाता फिरे ! किन्तु वास्तव में खुले स्थानों की अपेक्षा इस समय इस सघन बन का मार्ग ही हमारे लिये कम खतरनाक था।

मार्ग में चलते-चलते हठात् हमारे सामने एक बहुत भारी वृक्ष पड़ा हुआ दिखाई दिया। उसी को देख कर हरेन्द्र के मुख से अनायास ही उपरोक्त शब्द जल्दी में निकल गये। और सचमुच ही ऐसा विचित्र वृक्ष हमने आज तक कभी नहीं देखा था। मोटा अधिक न होने पर भी, उसका आकार, लम्बाई और रंग--सभी कुछ अतिरिक्त अद्भुत-सा प्रतीत होता था। पास जाकर भली-भांति देखने की इच्छा हम सभी के मन में अधिक बलवती हो उठी। परन्तु न जाने क्यों नागा-युवती का हृदय उस समय हठात कुछ सशंकित-सा हो उठा और उसने हरेन्द्र का हाथ पकड़ कर जोर से पीछे की ओर खींच लिया। उसके इस विचित्र आचरण पर हम सभी विस्मयान्वित हो उसकी ओर देखने लगे। नागा-युवती ने हमारा भ्रम दूर करने के अभिप्राय से एक पत्थर उठा कर उस निर्जीव वृक्ष की ओर फेंका; किन्तु वृक्ष के साथ टकराने पर भी उस पत्थर से कोई विशेष बात मालूम न हो सकी।

नागा लोगों के हाथ से छूटे हुये बल्लम इस समय भी हम दोनों के हाथों में थे। नागा-युवती का पत्थर फेंकना अवश्य ही कोई खास मायने रखता था। शायद यह वृक्ष इस जंगल की कोई विशेष वस्तु हो और उसके ऊपर आघात करने से कोई नई बात मलूम हो--इसी ख्याल से हरेन्द्र ने बड़ी फुर्ती से लपक कर उस वृक्ष के बीचो-बीच अपना वह बल्लम घुसेड़ दिया। उसका ऐसा करना था कि नागा युवती भीषण चीत्कार कर उठी और

उसके साथ ही साथ हमने देखा कि वृक्ष एक बारगी ही उछल पड़ा और क्षण भर में कुण्डली बना कर उसने हरेन्द्र को अपने घेरे में जकड़ लिया। ओह, हमें अब मालूम हुआ कि वह वृक्ष नहीं; बल्कि एक बहुत बड़ा पहाड़ी अजगर था जिसका मुख उस समय घास में छिपा होने के कारण हमें दिखाई नहीं दे सका था।

सोया हुआ अजगर बल्लम के आघात से क्रोधोन्मत्त हो उठा था। अपना विशाल मुख खोल कर इस जोर से उसने एक गहरी सांस खींची कि सामने की छोटी-छोटी झाड़ियां और घास सभी कुछ उसके मुख में चली गईं। मुझे पूर्ण विश्वास है, यदि उस समय हम उसके मुख के सामने खड़े होते तो इसमें सन्देह नहीं कि हम भी उसके भयंकर एंव कराल-गालों के भीतर घुसे चले जाते। भीतर की ओर को मुड़े हुये बड़े-बड़े तीखे दांत अपने शिकार को पकड़ने के लिये बड़ी जल्दी-जल्दी खुल और बन्द हो रहे थे। अजगर हरेन्द्र को अपने घेरे में जकड़ने के लिये विशाल देह की कुण्डली को दृढ़ से दृढ़तर करता जा रहा था। यद्यपि हरेन्द्र उस सुदृढ कुण्डली के बीच से निकलने की भरसक चेष्टा कर रहा था, किन्तु उसका छटपटाना और हाथ-पाँव पटकना सब बेकार हो चुका था।

अजगर का मुख अभी हरेन्द्र के पास तक नहीं पहुंच सका था; किंतु पहुंचने में अब अधिक विलम्ब भी नहीं रह गया था। सुनते

हैं अजगर के मुख में फंसी हुई वस्तु को छुड़ाना कोई सरल काम नहीं है। यह बात हम लोगों से अधिक वह नागा-युवती जानती थी—तभी एक क्षण की भी देर न करके वह तुरन्त मेरे हाथ से बल्लम छीन कर हरेन्द्र के पास जा पहुंची और अजगर का मुख बचा कर यथा शक्ति पूरे वेग से उसने उस अजगर के सिर पर आघात पहुंचाना शुरू कर दिया। बनदेवी को मेरी अकर्मण्यता पर शायद बहुत दुःख हुआ था, इसी लिये ताने के ढंग पर कुछ रोषपूर्ण शब्दों में उसने कहा,—"आप यहां खड़े-खड़े क्या कर रहे हैं? जाइये ना, कुछ उपाय आप भी कीजिये; देखते नहीं, आपके मित्र की क्या दशा हो रही है! चलिये, मैं भी चलती हूं आपके साथ।"

सचमुच मुझे अपने ऊपर बहुत लज्जा आई। मेरा मित्र संकट में फंसा हुआ था और मैं यहां चुपचाप खड़ा-खड़ा तमाशा देख रहा था—छिः कैसी घृणास्पद बात थी! लपक कर अविलम्ब मैं हरेन्द्र के पास जा पहुंचा और उसकी कमर पकड़ कर खींचने लगा। ओःफ, अपनी पूरी शक्ति लगाने पर भी मैं उस अजगर की सुदृढ़ कुण्डली के भीतर से अपने मित्र को बाहर न खींच सका। हरेन्द्र इस बुरी तरह से उस कुण्डली में भिंच चुका था कि उसे सांस लेने में भी अब बड़ा कष्ट होने लगा था। नागा-युवती ने संकेत करके मुझे हरेन्द्र को खींचने से मना कर दिया। यह ठीक भी था—एक अजगर की कुण्डली में फंसे हुए मनुष्य को खींच कर बाहर करना किसी प्रकार भी संभव नहीं। आघात पहुंचा कर

अजगर को मार डालना या उसकी कुण्डलियों को शिथिल कर देना, यही एकमात्र सर्वोत्तम उपाय हो सकता था। इतने बड़े विशाल देह वाले अजगर की कुण्डलिएं भी कोई साधारण नहीं होतीं, जो यूं ही खोल डाली जायें।

तब मैं हरेन्द्र का बल्लम, जो अभी तक अजगर की देह में घुसा हुआ था—लेकर नागा-युवती के पास जा पहुंचा और पूरे वेग से उस अजगर के सिर पर आघात पहुंचाने लगा। एक ओर से मैं और दूसरी ओर से वह नागा-युवती पूरे वेग से अजगर के सिर को छेदने लगे। हम लोग अपने-अपने बल्लम पूरी शक्ति लगा कर बारम्बार उसके सिर में घुसेड़ते और बाहर निकाल कर पुनः उसी प्रकार करते। बड़ी देर तक यही क्रम चलता रहा, यहां तक कि अजगर का भारी सिर बल्लमों के आघात से बिल्कुल क्षत-विक्षत हो गया। यद्यपि मुख फेर-फेर कर हमें निगल जाने की उसने बहुत चेष्टा की, किन्तु विशेष सावधानी और फुर्ती से बचते रहने के कारण वह हमारा तनिक भी अनिष्ट न कर सका और अंत में हमने उसे मार ही डाला।

अजगर के मरते ही मैंने अर्द्ध-विक्षिप्त अवस्था में हरेन्द्र को दृढ़ कुण्डली के भीतर से खींच कर बाहर किया और अपनी बोतल से पानी निकाल कर पहले उसका मुख धुलाने के बाद थोड़ा-सा पानी पिला भी दिया। शीतल जल के स्पर्श से वह फिर पहले की तरह चैतन्य हो उठा और एकबार भयभीत दृष्टि से उस

मृत अजगर की ओर देख कर कहने लगा,—"ओह, यदि आप लोग न होते तो आज यह दुष्ट मुझे निगल ही जाता।"

"हां, इसके लिये तुम्हें इनका कृतज्ञ होना चाहिये हरेन्द्र!" मैंने नागा-युवती की ओर संकेत करते हुये उससे कहा।

हरेन्द्र उसकी ओर देख कर केवल मुस्करा ही दिया। नागा-युवती भी शायद हमारी बातों को समझ गई थी। अतः एक बार हरेन्द्र, दूसरी बार मुझे और बनदेवी को देख कर वह स्वयं भी मुस्करा उठी; किंतु शीघ्र ही लज्जा से लाल हो कर अपनी गर्दन भूमि की ओर झुका ली।

"अच्छा अब आप लोग यहां से चलेंगे भी या यूं ही जंगल में खड़े-खड़े प्रेमाभिनय करते रहेंगे।" सहसा बनदेवी ने रुष्ट होते हुये कहा।

"प्रेमाभिनय! यह आप क्या कह रही हैं, भाभी जी?" अनायास ही हरेन्द्र के मुख से 'भाभी जी' का सम्बोधन निकल गया, जिसे सुनकर बनदेवी की भी ठीक वही दशा हुई जो अब से एक क्षण पहले नागा-युवती की हो चुकी थी। बनदेवी के रुष्ट होने के भय से वह तुरन्त ही वहां से चल पड़ा; किंतु उस बेचारी को रुष्ट होने की फुरसत ही कहां थी? लज्जा से लाल होकर वह इस समय दूसरी ओर देखने लग गई थी। और जब मैंने उसका हाथ पकड़ कर अपने साथ चलने का संकेत किया तो वह

चुपचाप मेरा हाथ थामे हुये वहां से चल पड़ी। बहुत दूर तक हम लोग चुपचाप ही चलते रहे।

★ ★ ★ ★

सघन बन प्राय: समाप्त हो चुका था और हम लोग अब एक ऊंचे पहाड़ की तलहटी में पहुंच चुके थे। परन्तु यह देख कर हमें महान् आश्चर्य हो रहा था कि 'गज-कपाल' की ऊंची चोटी इस समय ठीक हमारे सामने थोड़ी ही दूर पर दिखाई दे रही थी। तो क्या इतनी दूर चलते रहने के बाद भी घूम-फिर कर हम लोग पुन: उसी भयंकर गुफा के समीप आ पहुंचे थे। हे भगवन, इस नागा-पर्वत का यह कैसा माया-जाल था!

अभी हम इस विषय पर सोच ही रहे थे कि इतने में 'गज-कपाल' की ओर से भीषण कोलाहल का शब्द हम लोगों को सुनाई देने लगा और वह शब्द उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जा रहा था। हम लोगों का ध्यान तुरन्त उस ओर आकृष्ट हो गया। हमने देखा, गज-कपाल के नीचे—एक-एक करके बहुत से नागा गुफा के द्वार से निकल-निकल कर वहां जमा हो रहे थे। सब के हाथों में खड्ग और ऊंचे-ऊंचे भाले तथा कंधों पर धनुष और बाणों से भरे हुये तरकश लिये—सब इसी ओर को देख रहे थे। जान पड़ता था जैसे किसी भारी युद्ध की तैयारी करके वे लोग रण-स्थल में खड़े हुये थे।

दूर से उन लोगों की भाव-भङ्गिमा देखने से यही प्रतीत होता

था जैसे किसी खोई हुई वस्तु को वे लोग ढूँढ़ना चाहते हों। अनेक नागा हाथों से इधर-उधर संकेत करते हुये भी दिखाई दे रहे थे। कुछ नागा घाटी के नीचे, कुछ ऊपर और कुछ इधर-उधर अपने-अपने हाथों को नचा कर आपस में एक-दूसरे को कुछ बताने की चेष्टा कर रहे थे। हमारी समझ में नहीं आता था कि आखिर किस वस्तु के लिये वे लोग इतने उद्विग्न हो उठे थे। अवश्य ही या तो कोई शिकार उनके हाथ से निकल कर भाग गया होगा--या कोई बहुत बड़ा शत्रु उनके ऊपर आक्रमण करने की तैयारी कर रहा होगा।

हम लोग इसी उधेड़-बुन में अभी तक उस चोटी की ओर एकटक दृष्टि से देख ही रहे थे कि इतने में बनदेवी जोर से यह कह कर चिल्ला उठी—"भईया! मेरे भईया!!" और यह कहते न कहते ही वह सामने की ओर भागने लगी। सहसा हम दोनों का ध्यान भी उसी ओर आकृष्ट हो गया।

हमने देखा, एक नवयुवक दूर से भागा हुआ हमारी तरफ चला आ रहा था। आपाद-मस्तक धूल में सना हुआ, नंगे सिर—बाल खड़े हुये, सारे शरीर में स्थान-स्थान पर चोट लगने के कारण रक्त बहता हुआ, अङ्ग-प्रतिअङ्ग में घाव के चिन्ह लिये, केवल एक पैन्ट और जूता पहने- अर्द्ध-नग्न शरीर का वह नवयुवक ठीक एक पागल के समान अपनी पूरी शक्ति से भागा चला आ रहा था। उसी को देख कर बनदेवी चिल्ला उठी थी—"भैया—मेरे भैया!" कह कर। ओह, वह अभागा भी

हमारी तरह इन दुष्टों की यन्त्रणाओं का अनुभव प्राप्त करके अब उनके बन्धन से किसी प्रकार अपने को छुड़ा सका था। परन्तु उसकी दशा देखने से स्पष्ट ज्ञात होता था कि नागा-जाति के विषय में उसका अनुभव हम लोगों से कहीं अधिक और महत्व-पूर्ण होगा। ओफ, केवल अपने देवी-देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिये ही वे हम मनुष्यों की बलि चढ़ाने में अपना कल्याण समझते हैं — छिः।

नवयुवक आते ही बनदेवी का कंधा पकड़ कर झूल गया। देर तक भागते रहने के कारण उसकी सांस ऊपर को चढ़ गई थी और थकावट से चूर-चूर हो कर वह बुरी तरह से हांफ रहा था। यदि उस समय लपक कर मैं उन दोनों को न संभाल लेता तो नवयुवक के साथ ही साथ बनदेवी भी उसके भार से भूमि पर गिर पड़ती। अनेक क्षण सुस्ताने के बाद जब उसका चित्त कुछ शान्त हुआ तो एक बार हमारी ओर देख कर उसने पूछा।

"ये दोनों महाशय कौन हैं, प्रभात ? "और प्रश्न करके वह हरेन्द्र और मेरे बीच आकर खड़ा हो गया, मानों हम दोनों से घनिष्ठता बढ़ाने के लिये ही उसने ऐसा किया था।......... प्रभात ! उसके मुख से बनदेवी के लिये यह सम्बोधन सुन कर सहसा मैं चौंक उठा। प्रभात.........या प्रभात कुमारी। हां, यही नाम तो था मणिपुर राज्य की मन्त्री-कुमारी का ! धीरे २ मुझे याद होती जा रहीं थीं अपनी रेलयात्रा की बातें। कलकत्ता से आते समय हमारी स्पेशल ट्रेन के फर्स्टक्लास के डब्बे में ये

दोनों ही तो थे उस दिन, जिनके साथ मेहरपुर रेलवे स्टेशन के आसपास कहीं एक दुर्घटना हो गई थी। और उस दुर्घटना के कारण थे हमारी कम्पनी के वे दोनों अंग्रेज, जो इन श्रीमती प्रभात कुमारी के साथ बलात्कार करने पर उतारू हो गये थे.........इत्यादि।

बस, अब मुझे उन दोनों के परिचय की भी आवश्यकता नहीं रही थी; किन्तु एक बात अभी भी मेरे हृदय में बुरी तरह से खटक रही थी, और वह थी इन दोनों के इस भीषण जंगल में पहुंचने की बात ! एक रियासत के मन्त्री की नवयुवती कन्या को क्या जरूरत पड़ी थी यहां आने की ?

वर्द्धित उत्सुकता को न दबा सकने के कारण मैं पूछ ही बैठा उन दोनों से,—"आप लोग मणिपुर से यहां कैसे आ पहुंचे ?"

"ठहरिये, पहले मेरे प्रश्न का उत्तर मिल जाने दीजिये !" यह कह कर वह तुरन्त प्रभात कुमारी की ओर घूम पड़ा। वह बेचारी मेरे प्रश्न से पहले ही कुछ चकित-सी हो रही थी। उसे आश्चर्य हो रहा था कि सहसा मुझे उन दोनों का परिचय कैसे प्राप्त हो गया। उसकी उद्विग्नता दबाने के अभिप्राय से मैं बोला—

"परेशानी की कोई बात नहीं, कुमारी जी! पहले आप हमारा परिचय अपने भाई साहब को देदें, तब मैं भी आपको

कुल बातें बता दूंगा।"

मेरी बात से उसकी कुछ परेशानी दूर हुई हो या नहीं, यहतो मैं कह नहीं सकता—हां, मेरे कहने से उसने हम दोनों का परिचय अवश्य करा दिया आपस में। वह बोली,—"इनका नाम तो मैं अभी तक जानती नहीं भैया! किंतु हां, इतना जानती हूँ कि यह सरकारी फौज में एक हवाई उड़ाके की जगह काम करते हैं और वह दूसरे इनके साथी हैं मिस्टर हरेन्द्र कुमार मुखोपाध्याय, जो कि शायद उसी हवाई जहाज पर कैमरामैन हैं।

"ओ, मैं समझा! आप लोग भी हमारी तरह अचानक इस जंगल में आकर फंस गये जान पड़ते हैं?" कहते हुए उस नवयुवक ने हमारे साथ बड़े तपाक से हाथ मिलाया और कुछ मुस्कराकर बोला,—"मेरा नाम है नरेन्द्र सिन्हा और यह हैं मेरी दूर के रिश्ते की बहन—प्रभात कुमारी! हम दोनों मणिपुर राज्य के ही रहने वाले हैं—जैसा कि आपने अभी-अभी अपने मुख से कहा था; किन्तु दुर्भाग्यवश हमें अकस्मात ही अपनी रियासत से भागना पड़ गया। आपने सुना होगा, जापानी शत्रुओं ने हठात् आकर हमारे राज्य को चारों ओर से घेर लिया है। हम लोगों के लिये यह समय बहुत ही कष्टदायक है—चारों ओर से विपद के काले बादल हम लोगों के सिरों पर आकर मंडराने लगे हैं। उसी बचने के लिये हम लोग भाग आये थे, किन्तु यहां आकर......"

"इस नई विपद में फंसना पड़ गया।" प्रभात कुमारी ने अपने भाई का अधूरा वाक्य पूरा करते हुए कहा,—"हम लोग

नहीं जानते कि हमारे माता-पिता अथवा बन्धु-बान्धवों का क्या हाल हो रहा होगा ? हम अभी वहां पहुंच भी नहीं पाये थे कि रास्ते से ही इधर भाग निकले। हम दोनों कलकत्ता यूनीवर्सिटी में पढ़ा करते थे कि एक दिन पिताजी का तार पाते ही हम लोग वहां से चल पड़े। अपनी रियासत के बाहर ही हमें शत्रुओं के आक्रमण का पता चल गया था। अतएव वह दुःख-संवाद सुनने के बाद हमें फिर वहां तक जाने का साहस ही न हुआ और एक अन्य मार्ग से, अपने को शत्रुओं की दृष्टि से बचाते हुए हम लोग यहां आ पहुंचे। बाद में जो कुछ हुआ, उसे आप लोग जानते ही हैं।"

और यह कहते न कहते ही प्रभात कुमारी के नेत्र सजल हो उठे और उनमें से स्वच्छ मोतियों के समान अश्रु-बिन्दु लुढ़क कर उसके गुलाबी गालों को तर करने लगे। उसके भाई नरेन्द्र सिन्हा की भी प्रायः यही अवस्था थी; किन्तु पुरुष होने के कारण वह रोना चाह कर भी रो नहीं सकता था। उन दोनों को सान्तवना देने के अभिप्राय से मैं बोला,—"देखिये, समय किसी का सदा एक-सा नहीं रहता। भगवान चाहेंगे तो यह कष्ट जल्दी ही दूर............"

मेरा वाक्य अभी पूरा भी न हो पाया था कि सहसा तीखे बाणों की वर्षा हमारे चारों ओर होने लगी। बातों ही बातों में हम लोग नागा लोगों की बातें बिल्कुल भूल ही गये थे, जिसका

परिणाम यह हुआ कि हम एक बार फिर उन दुष्टों के चंगुल में बड़ी बुरी तरह से फंस गये। इस बार का आक्रमण पहले से कहीं अधिक बढ़ा हुआ और प्राणघातक था। भीषण कोलाहल के साथ हमारे चारों ओर नागा ही नागा दिखाई दे रहे थे।

गज-कपाल का शेष

कड़-कड़''''कड़क-धुम्म्''कड़म-धुम्म् !

भीषण गर्जना के साथ-साथ वह समस्त घाटी काले और भूरे रंग के धुएं के गुब्बार से एकबारगी ही भर उठी। चारों ओर हाहाकार मच गया। सामने की पहाड़ी से बड़े-बड़े गोले आकाश में उठते और विद्युत जैसी तेजी से वायु को चीरते हुए ठीक गज-कपाल की चोटी से टकरा कर फट जाते। मेघ-गर्जन से भी अधिक भयानक गर्जन होता और उसमें से बहुत-सा धुवां निकल कर चारों ओर फैल जाता; इतना ही नहीं, गोले के फटते ही उसके भीतर से छोटे-छोटे छर्रे और लोहे की बनी हुई तेज़ धार की असंख्य सूईएं निकल कर बड़ी तेजी से चारों ओर फैल जातीं, और उनके आघात से नागा लोग भारी तादाद में भूमि पर गिरने और तड़प-तड़प कर अपने प्राण विसर्जन करने लगे।

इस अप्रत्याशित घटना ने समस्त नागा जाति में एक खलबली-सी मचा दी। जो लोग चारों ओर से घेर कर हमारे ऊपर बाणों की वर्षा कर रहे थे; अब उन्हीं लोगों के ऊपर बम-वर्षा हो रही थी, और उन्हें अपने प्राण बचाना भी दूभर हो गया था। अभागे आये थे हम लोगों को मारने; किंतु अब स्वयं ही मर-मर कर गिरने आरम्भ हो गये थे; उल्टा लेने का देना पड़ रहा था। भीषण कोलाहल से तमाम घाटी गूंज रही थी। सभी को अपने-अपने प्राणों का मोह था; सभी जिधर-तिधर भागे चले जा रहे थे, किसी को किसी से बात करने का भी अवकाश नहीं था। ऊपर से बमों का घोर गर्जन-तरजन, नीचे से आहत प्राणियों का करुण-क्रन्दन! ओह, कैसा वीभत्स दृश्य हो गया था वहां पर!

देखते-देखते सब नागा हमें अकेला छोड़ कर भाग गये। हमारे लिये मैदान अब बिल्कुल साफ था। अतएव व्यर्थ ही वहां खड़े-खड़े अपना समय नष्ट करना हमने उचित न समझा। हम लोगों में से मिस्टर सिन्हा ही अब एक ऐसे व्यक्ति थे, जिनके लिये बिना सहारे के एक पग आगे बढ़ना भी नितान्त असंभव था। अतः एक ओर से हरेन्द्र और दूसरी ओर से मैंने कंधे का सहारा देकर उन्हें ऊपर उठाया और दोनों युवतियों को अपने आगे चलने का संकेत करके हम लोग वहां से चल पड़े। हरेन्द्र के कथनानुसार हम लोगों का जहाज भी अब उस स्थान से अधिक दूर नहीं था। यदि बीच में और कोई विघ्न न पड़े

तो केवल एक पहाड़ी चढ़ने के बाद ही हम वहां पहुंच सकते थे।

स्त्रियों का कोलाहल, बच्चों का आर्त्तनाद तथा आहत नागा लोगों का करुण-क्रन्दन—सबने मिलकर घाटी भर में एक विचित्र करुणा का श्रोत प्रवाहित कर दिया था। नागा-पर्वत का वह खण्ड मानो उस भयानक आर्त्तनाद से फट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। हिंसावृति करने वालों का वह दुष्परिणाम, आज भी जब मुझे याद आ जाता है तो सारे शरीर में रोमांच की एक लहर-सी दौड़ जाती है। वही नागा जाति, जो मानव-प्राणों को पशुओं के तुल्य बध करने में भी तनिक नहीं हिचकिचाती—उस समय रोती बिलखती और तड़पती हुई कैसी दयनीय अवस्था में दिखाई देती थी। ओह, भगवान्! मानव-जाति के उस अंग को—जंगलों में रहने वाली उस असभ्य जाति के मन से हिंसावृत्ति दूर करने की दया करो, भगवन्!

बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करते हुये अन्त में हम लोग उस सीधी पहाड़ी के ऊपर समतल भूमि के निकट पहुंच गये। यद्यपि उन निर्जीव-से मिस्टर सिन्हा महोदय को पहाड़ी के ऊपर लाने में हरेन्द्र को और मुझे अधिक पश्रिम करना पड़ा था; तथापि ज्यूं-त्यूं करके हम लोग अपने जहाज के पास तक पहुंच ही गये। दूर से ही हमने देख लिया था कि अय्यर उस समय भी आँखों पर दूरबीन चढ़ाये अपनी एयर-गन को गज-कपाल की ओर घुमा कर येन-केन गोले बरसाने में

तल्लीन था। रहमान एंजिन की देख-भाल कर रहा था। सबसे अधिक प्रसन्नता मुझे यह देख कर हुई कि वह जहाज के मुड़े हुये पंख को भी सीधा करके बिल्कुल ठीक उड़ने योग्य बना चुका था। इतना ही नहीं, समतल भूमि को भी कुछ दूर तक उसने बिल्कुल साफ कर छोड़ा था।

वहां का रंग-ढंग देखने से मुझे दूर से ही पता चल गया था कि मेरे कुशल सहकारी ने सब काम मेरे पहुंचने के पहले ही तैयार कर रक्खा था। अब हमारे पहुंचने भर की ही देर थी। आहट पाते ही रहमान खुशी के मारे चिल्ला उठा,—"अय्यर दादा, अय्यर दादा, अरे देखो तो या गोले ही बरसाते रहोगे ?"

दूरबीन चढ़ाये हुए ही अय्यर ने हमारी ओर घूम कर देखा। दो के स्थान पर तीन और नई मूर्तियों को देख, वह कुछ विचित्र ढंग से मुंह टेढ़ा करके एक दीर्घ निःश्वास के साथ लम्बा "हूँ" का स्वर खींचता हुआ बोला,—"बैठिए जल्दी, अब देर करने का समय नहीं है।"

और बड़ी शीघ्रता से हम लोगों को धकेल कर उसने जहाज के भीतर बन्द कर दिया। हरेन्द्र ने जल्दी से अपना कैमरा संभाल कर भग्नावशेष गज-कपाल की एक फ़ोटो खींच डाली; और तभी अय्यर ने यह कहते हुये एयर-गन से अन्तिम गोला फेंका,—"मानव जाति का बध करने वाले इस गज-कपाल का बस यह ही शेष है !" दूसरे क्षण भीषण आवाज के साथ

पर्वत का वह खण्ड टुकड़े-टुकड़े हो कर वायु-मण्डल में चारों ओर बिखरा हुआ दिखाई दे रहा था। और तभी हम लोग आकाश-मार्ग से उड़ते हुये वापस चले जारहे थे।

★ ★ ★ ★
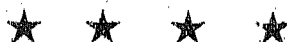
"जी नहीं, मुझे मालूम हो गया था कि आप लोग उस पहाड़ी के नीचे पहुंच चुके थे।" अय्यर ने हरेन्द्र की बात का उत्तर देते हुए कहा।

"जाने दो यार, क्यों डींग हांकते हो?" हरेन्द्र ने खीझते हुए कहा,—"ऐसे ही हमारे शुभचिंतक होते तो हम दोनों को उस दुर्गन्ध-युक्त सड़ी गुहा के भीतर अकेला छोड़ कर न भाग आते। वह तो हमारा भाग्य समझो अच्छा था जो उन नर-पिशाचों से बच कर चले आये।"

"अब ले भला वह भी क्या मेरे वश की बात थी, भाई!" अपनी सफाई देते हुए अय्यर ने कहा,—"पर्वत का पर्वत ही टूट कर जब गिर पड़े तो उसमें हमारा क्या दोष? रहमान से पूछो कितना भारी पहाड़ टूट पड़ा था वहां। मैं क्या, यदि मेरे जैसे दस और होते तो भी शायद उस भारी ढेर को दस दिन में भी हटाकर वहां से अलग न कर पाते। उस बात को ही जाने दो, हरेन्द्र! भाग्य अच्छा था, इसी से हम दोनों बच कर तुम लोगों से पहले चले आये।"

"जी हां, तुम्हारा ही भाग्य अच्छा था—हम तो अभागे थे

फिरे !" चिढ़ कर हरेन्द्र बोला,—"अभागे होते तो आज फिर तुम्हारी सूरत देखने न आजाते !"

"ओह, आप लोग तो आपस में लड़ने ही लगे। भाई, कोई दूसरा विषय छेड़ो ना ?' मिस्टर सिन्हा ने बीच-बचाव करते हुए कहा।

"अजी क्या दूसरा विषय छेड़ें, श्रीमानजी !" दुखित स्वर में अय्यर ने कहा,—"मुझे बड़ा रंज आता है इस लड़के की बातों पर। अब आप ही कहें, वह क्या हमारे वश की बात थोड़े ही थी ? और फिर पहले आकर हम लोग कोई बेकार तो बैठे नहीं रहे। रहमान ने आते ही जहाज का मुड़ा-तुड़ा पंख बनाया और मैंने सामने की झाड़ी-वाड़ी काट कर समतल भूमि को साफ किया। आखिर जहाज कोई भूमि पर बैठा-बैठा चिड़िया की तरह फुर्र से तो उड़ नहीं जाता। थोड़ी दूर जमीन पर भागने के बाद ही तो यह ऊपर चढ़ता है ना ? हमने इतना काम किया—फिर भी साहब, यह कहते हैं हमने कुछ किया ही नहीं।"

"कौन कहता है कि तुमने कुछ नहीं किया, अय्यर दादा ?" मैंने इसे बढ़ाते हुए कहा,—"वाह यदि आज तुम न होते तो हम लोग वहां से बच कर ही कैसे आते ? तुमने अपनी एयर गन से गोले बरसा कर वास्तव में हम लोगों के प्राण बचा लिये, नहीं तो न जाने आज हम क्या से क्या हो जाते।"

"ठीक तो है।" बड़े गर्व से छाती फुला कर वह अधेड़

भला मानुष बोला,—"भैया सच पूछो तो एक तुम्ही ऐसे व्यक्ति हो जो मेरा आदर और प्रशंसा करने में तनिक नहीं लजाते—और तुम्हारे ही कारण मैं इस काम पर डटा हुआ भी हूं; नहीं तो एक मिनट भी इन गदहों के साथ मेरी न पटे। भला हो तुम्हारा, भाई !"

तभी सहसा रहमान चिल्ला उठा,—"बातों में न पड़ कर जहाज पर कन्ट्रोल रक्खें, वीरेन्द्र दादा ! ओह, क्या कर रहे हैं आप ?"

सचमुच उसके कहते न कहते ही जहाज ने दो-तीन बार हल्का झटका सा दिया और सीधा उड़ने के बदले वह नीचे को उतरने लगा। यह अकस्मात क्या हो गया ? ऐंजिन की खराबी तो थी नहीं। तब—तब हठात् यह क्या हो गया ? ओह, पेट्रोल मीटर की सुई तो इस समय जीरो पर पहुंच कर थर्रा रही थी। पेट्रोल-टंकी खाली हो चुकी थी। दूरबीन से नीचे झांक कर देखा। चारों ओर हरे-भरे खेत लहरा रहे थे, अतः जहाज को वहां उतारने में कोई विशेष खतरा नहीं था। बड़े कौशल से ऐंजिन पर कन्ट्रोल करके हम लोग एक हरे-भरे खेत के किनारे उतर गये।

उपसंहार

मिस्टर सिन्हा से हमें मालूम हुआ कि वह स्थान मणिपुर राज्य की सीमा के अन्तर्गत था। अतएव प्रभात कुमारी के साथ उन्होंने वहीं से अपने घर जाने की इच्छा प्रकट की। साथ ही हम लोगों को भी हठ करके वे लोग अपने साथ ही ले गये। तीन दिन और तीन रात हमने शाही मेहमान बन कर बड़े आनन्द से

वहीं पर व्यतीत कीं; और तब चौथे दिन पेट्रोल का यथेष्ट ... करके हम लोग वहां से बिदा हुए—दिल में एक कसक और मीठी वेदना लिये हुए।

यद्यपि प्रभात कुमारी के साथ मेरा मिलन अकस्मात विचित्र ढंग से हुआ था; तथापि उन अल्प क्षणों में ही ... एक-दूसरे को भली-भांति पहिचान लिया था। एक-दूसरे के इतने समीप आकर भी हम अब कोसों दूर हैं। घोर संकट के समय उसकी मैंने सहायता की थी; किन्तु इसका मतलब यह तो नहीं कि किसी लोभ के वशीभूत होकर ही मैंने ऐसा किया था। क्या वह मेरा कर्त्तव्य नहीं था? कर्त्तव्य-पालन करने वाला क्या फल की भी इच्छा करता है कभी? करे भी तो क्या वह पूरी भी हो सकती थी? कहां वह एक मन्त्री की लाड़ली पुत्री और कहां मैं एक सैनिक—हवाई उड़ाका! आकाश-पाताल का अन्तर! नागा युवति और हरेन्द्र में समानता थी—इसी से प्रभात कुमारी की दया से वे दोनों आज भी सुखी हैं। दाम्पत्य सुख उन दोनों के भाग्य में था; पर मेरे नहीं।

युद्ध समाप्त हो गया है। मैं अपने घर पर हूं; किन्तु पिताजी के बार-बार हठ करने पर भी मैं न जाने क्यों अभी तक भी अपना विवाह नहीं करा सका हूं। क्यों? शायद इस लिये कि मेरे मन में अभी भी वह कसक मौजूद है—पूरी कहानी लिख कर भी वही वेदना, वही कसक—वही सब कुछ। ओह भगवान! यह दूर भी होगी कभी? शायद नहीं, इस जीवन में कभी नहीं। हूं हुंह, पगला सैनिक! मूर्ख उड़ाका!!